नई दिल्ली
रविवार, 08 फरवरी, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-17 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

धामी ने उत्तराखंड में सांप्रदायिक विष फैलाया हुआ है, इसीलिए अड़ जाने वाले दीपक को 'हीरो' सी इज्जत 4

बजट में आर्थिक सुधार नहीं, सिर्फ कोरी बातें 3

माघ की मिठास 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

'अनछपी' किताब बनी गले की फांस

जनरल नरवणे के 'अप्रकाशित' संस्मरण से मोदी सरकार अचानक इतना भयभीत क्यों हो गई है?

ए.जे. प्रबल

राहुल गांधी ने 2 फरवरी को लोकसभा में बोलना शुरू ही किया था कि बमुश्किल दो मिनट बाद ही, परेशान दिखते राजनाथ सिंह अपनी सीट से खड़े हो गए। विपक्ष के नेता ने जब तक पूर्व सेना प्रमुख जनरल एम.एम. नरवणे के संस्मरणों पर आधारित एक लेख की कुछ लाइनें पढ़ना शुरू नहीं किया था, सदन शांत था।

"जब चार चीनी टैंक भारतीय इलाके में घुसे, तो जनरल लिखते हैं..." राहुल गांधी बस इतना ही कह पाए थे कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और गृह मंत्री अमित शाह के साथ बैठे रक्षा मंत्री अपनी जगह पर खड़े हो गए और उन्हें बीच में ही रोक दिया- ऐसी कोई किताब है ही नहीं! स्पीकर को बगैर सबूत वाली बातें पढ़ने की इजाजत नहीं देनी चाहिए!

अगले 10 मिनट के दौरान राजनाथ कम-से-कम चार बार खड़े हुए और उन्होंने वही बात दोहराईः एलओपी जिस किताब का जिक्र कर रहे हैं, वह कभी प्रकाशित ही नहीं हुई... मेरा सिर्फ एक सवाल हैः वह जिस किताब से कोट कर रहे हैं, वह कहां है...? अगर उनके पास किताब है, तो उसकी एक प्रति हाउस में रखें... यह किताब कभी प्रकाशित ही नहीं हुई... वह किताब की एक कॉपी प्रस्तुत करें

(राहुल गांधी ने इस बात पर गौर किया और 4 फरवरी को अपने साथ किताब की एक प्रति लेकर आए। कैमरे के सामने दिखाते हुए उन्होंने कहाः "भारत के हर युवा को यह देखना चाहिए कि यह किताब मौजूद है।")

कांग्रेस सांसद के. सी. वेणुगोपाल ने जब स्पीकर का ध्यान इस बात की ओर दिलाया कि एलओपी फरवरी 2026 में 'कारवां' पत्रिका में प्रकाशित सुशांत सिंह का लिखा लेख 'नरावनेज मोमेंट ऑफ ट्रुथ' पढ़ रहे हैं, तो अमित शाह ने जवाब दियाः "मैगजीन कुछ भी छाप सकती है अगर किताब छपी ही नहीं है, तो उसे कैसे कोट किया जा सकता है?" राहुल गांधी के जोर देकर कहने पर कि कंटेंट "सौ प्रतिशत सही" है, ओम बिरला ने उनकी बात खारिज कर दी रक्षा मंत्री ने बोल दिया, और बात खत्म। वह किताब मौजूद ही नहीं है।

पता चला कि ऐसा ही हुआ। जनरल नरवणे की किताब 'फोर स्टार्स ऑफ डेस्टिनी' को प्रकाशक पेंगुइन रैंडम हाउस ने साफ तौर पर लिस्ट किया था, जिसमें प्रकाशन की तारीखः 30 अप्रैल 2024, प्रिंट लेंथः 448 पेज, वजनः 650 ग्राम, ISBN नंबरः 10-0670099759 और 13-978-0670099 दर्ज है। इसे अमेजन और फ्लिपकार्ट जैसे ऑनलाइन रिटेलर्स ने भी लिस्ट किया था।

हालांकि, ऑनलाइन दिख रहे ये निशान 48 घंटे से भी कम समय में हटा दिए गए। हाथ में भौतिक सबूत मौजूद होने पर राहुल गांधी ने सरकार को चुनौती दीः "अगर प्रधानमंत्री सदन में आते हैं, मुझे शक है कि वे आएंगे- तो मैं उन्हें यह किताब देना चाहूंगा गृह मंत्री ने कहा था कि किताब मौजूद नहीं है; रक्षा मंत्री और सरकार ने कहा कि किताब कभी पब्लिश नहीं हुई, लेकिन यह रही किताब"

जो लेख उद्धृत करने से राहुल गांधी को रोका गया था, वह एक ऐसे अंश से शुरू होता है जिसे प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया ने दिसंबर 2023 में जारी किया था और जिसे 'द प्रिंट' ने 18 दिसंबर 2023 को छापा था। इसका ब्योरा पिछले दो सालों से सार्वजनिक तौर पर उपलब्ध है। फिर भी सरकार ने संसद में इसे दबाने की पूरी कोशिश की।

राहुल गांधी ने पूछा- "इसमें ऐसा क्या लिखा है जिससे वे इतना डर रहे हैं? अगर वे डरे हुए नहीं हैं, तो उन्हें मुझे इसे पढ़ने देना चाहिए। वे इतना क्यों डर रहे हैं?"

सच में, क्यों?

*

जनरल मनोज मुकुंद नरवणे (रिटायर्ड) दिसंबर 2019 से अप्रैल 2022 तक सैन्य प्रमुख थे। यह वही समय था जब लद्दाख की गलवान घाटी में भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच झड़प हुई थी जिसमें 20 भारतीय सैनिक आमने-सामने की लड़ाई में मारे गए थे। यह वह समय भी था जब जनरल बिपिन रावत भारत के प्रथम चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ (सीडीएस) नियुक्त हुए, और तीनों सशस्त्र सेनाओं की देखरेख जिनके जिम्मे थी। यह एक महत्वपूर्ण दौर था, जिसमें पूर्वी लद्दाख में चीनी घुसपैठ हुई और कुछ इलाका हाथ से निकल गया, जिसे भारत ने स्वीकार भी किया है। इसी दौरान विवादास्पद अग्निपथ योजना भी शुरू की गई, जिसके बारे में नरवणे लिखते हैं कि अचानक आई इस योजना का सेना ने विरोध किया था।

> गलवान 2020 के एक अहम मौके पर प्रधानमंत्री मोदी का यह निर्देश कि "जो उचित समझो, वह करो", सेना प्रमुख नरवणे तक पहुंचाने में दो घंटे से ज्यादा का समय लगा। अगर यह वाकई सच है तो सरकार को बहुत कुछ बताना-समझाना पड़ेगा

सार्वजनिक संसद परिसर में पूर्व सेना प्रमुख जनरल एम.एम. नरवणे की पुस्तक दिखाते नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी

येल यूनिवर्सिटी में लेक्चरर और 'कारवां' के कंसल्टिंग एडिटर सुशांत सिंह खुद भी एक्स आर्मी मैन हैं। उन्होंने अपना लेख नरवणे की किताब की टाइप की हुई पांडुलिपि पर आधारित किया है। वह लिखते हैंः 'यही वजह है कि नरवणे के संस्मरण पर यह लेख मायने रखता है... यह चीनी आक्रामकता, उन फैसलों पर रोशनी डालता है जिनके कारण भारतीय लोगों की जान गई और इलाका खोना पड़ा, और ऐसे समय में राजनीतिक जवाबदेही की परेशान करने वाली कमी को दिखाता है जब देश युद्ध के कगार पर था।'

सुशांत सिंह ने 31 अगस्त 2020 को रात 8.15 बजे आर्मी चीफ को फोन आने के बाद जो कुछ हुआ, उसके जिक्र से अपनी बात शुरू की- गलवान में हुई हाथापाई को ग्यारह हफ्ते हो चुके थे। भारतीय और चीनी कमांडर लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल पर डिसएंगेजमेंट बातचीत में लगे हुए थे। नेशनल सिक्योरिटी एडवाइजर (एनएसए) अजीत कुमार डोभाल की अध्यक्षता वाले अनौपचारिक चाइना स्टडी ग्रुप की कई दौर की बैठकें हो चुकी थीं।

नरवणे लिखते हैं कि इस बात पर सहमति थी कि भारत को कुछ करना होगा। हालांकि, उन्हें निर्देश था कि जब तक 'ऊपर से' मंजूरी न मिले, चीनी सैनिकों पर गोली न चलाएं। सेना ने इसका विरोध किया। गलवान की घटनाओं को देखते हुए, उकसाए जाने पर सेना को कार्रवाई करने की आजादी चाहिए थी। आखिरकार यह तय हुआ कि 'अंतिम उपाय के तौर पर, अगर हमारी अपनी शारीरिक सुरक्षा खतरे में है, तो वह टुकड़ी और सिर्फ वही टुकड़ी आत्मरक्षा में गोली चला सकती है'।

31 अगस्त को आया फोन नॉर्दर्न कमांड के हेड लेफ्टिनेंट जनरल वाई.के. जोशी का था। कैलाश रेंज पर राचिन ला में भारत के कब्जे वाली जगह की ओर चार चीनी टैंक आगे बढ़ रहे थे। भारतीय सैनिकों द्वारा चलाई गई चेतावनी फ्लेयर्स को नजरअंदाज किया जा रहा था। भारत के पास ऊंचाई, तोपखाने और भारी टैंकों का फायदा था। जनरल जोशी आगे बढ़ रहे चीनी सैनिकों को रोकने के लिए गोली चलाने की इजाजत चाहते थे। नरवणे ने सीडीएस जनरल रावत, रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह, एनएसए अजीत डोभाल, विदेश मंत्री एस. जयशंकर को फोन करके पूछाः "मेरे लिए क्या आदेश हैं?"

पीटीआई द्वारा जारी किए गए अंशों और 'कारवां' के लेख में दिए गए अपने बयान में, जनरल नरवणे लिखते हैं कि उन्हें रात 10.30 बजे तक इंतजार करवाया गया। तभी रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने आखिरकार फोन करके प्रधानमंत्री मोदी का निर्देश उन्हें दियाः "जो उचित समझो, वह करो"।

नरवणे लिखते हैं, 'मुझे एक मुश्किल काम सौंपा गया था। इस पूरी आजादी के साथ, अब सारी जिम्मेदारी मुझ पर थी।' उन्होंने जोशी से कहा कि भारत को पहली गोली नहीं चलानी चाहिए, और उनसे यह सुनिश्चित करने को कहा कि भारतीय भारी टैंकों को रिज के किनारे पर इस तरह तैनात किया जाए कि उनकी नोजल नीचे चीनी टैंकों की तरफ रहें।

अब अगर इतने अहम समय में भी प्रधानमंत्री रक्षा मंत्री, एनएसए, सीडीएस और विदेश मंत्रालय के लिए दो घंटे से ज्यादा समय तक वाकई उपलब्ध नहीं थे, तो सरकार को बहुत कुछ बताना-समझाना होगा। प्रधानमंत्री तक कम्युनिकेशन चैनल 24 घंटे खुले रहते हैं और सिक्योरिटी प्रोटोकॉल के तहत उन्हें कभी अकेला नहीं छोड़ा जाता। तो फिर 31 अगस्त 2020 की शाम को क्या हुआ था? क्या हम कभी जान सकेंगे?

*

3 फरवरी को लोकसभा में राजनाथ सिंह के इस बयान के बाद कि नवरणे की किताब को 'तथ्यात्मक त्रुटियों' के चलते मंजूरी नहीं दी गई है, रहस्य और गहरा गया है। क्या किताब बिना मंजूरी के मुद्रित और प्रकाशित हो सकती है? क्या इसे अमेजन पर प्री-ऑर्डर के लिए लिस्ट किया जा सकता था (जिन्हें बाद में रद्द कर दिया गया)? क्या प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया ने इसका कोई अंश जारी किया था? सबसे बढ़कर यह कि अगर किताब कभी प्रकाशित ही नहीं हुई, तो उसकी भौतिक प्रति कहां से आई और कैसे मिली?

ऐसा लगता है कि पूर्व सेना प्रमुख को खुद भी सरकार के क्लीयरेंस रोकने के फैसले के बारे में नहीं पता था; शायद यह फैसला उन्हें कभी बताया ही नहीं गया? अक्तूबर 2025 में आज तक और कसौली में खुशवंत सिंह लिटरेचर फेस्टिवल में उनसे साफ तौर पर पूछा गया कि किताब अभी तक रिलीज क्यों नहीं हुई है। नरवणे ने कहा, "मेरा काम किताब लिखना और प्रकाशकों को देना था।

प्रकाशकों को रक्षा मंत्रालय से इजाजत लेनी थी। उन्होंने (किताब) उन्हें दे दी है। यह रिव्यू में है। एक साल से ज्यादा हो चुका है।"

जनरल नरवणे ने यह भी बताया कि जांच प्रक्रिया में रक्षा मंत्रालय के अलावा और भी लोग शामिल हो सकते हैं, ताकि किसी भी गड़बड़ी की आशंका न्यूनतम रहे। उन्होंने कहा कि हालांकि उन्होंने लिखा तो सैन्य अभियानों के बारे में था, लेकिन उसमें लिखी बातें विदेश मंत्रालय, रक्षा उत्पादन वगैरह को भी प्रभावित कर सकती हैं, इसलिए जांच प्रक्रिया लंबी हो सकती है।

शेष पेज 2 पर ▸

"आईसीसी पर एक प्रभावशाली सदस्य का कब्जा"

टी20 वर्ल्ड कप (7 फरवरी-8 मार्च) से पहले दो दिक्कतें आईं: पहले, बांग्लादेश को बाहर कर दिया गया और फिर पाकिस्तान ने 15 फरवरी को भारत के साथ होने वाले अहम मैच के सोचे-समझे बॉयकॉट की घोषणा कर दी। **गौतम भट्टाचार्य** के साथ इंटरव्यू में अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट काउंसिल (आईसीसी) के पूर्व सीईओ **हारून लोरगाट** ने इसे 'ग्लोबल गवर्निंग बोर्ड के नाकाम होने का चेतावनी संकेत' बताया।

क्रिकेट में शायद ही कोई प्रशासनिक भूमिका हो, जो लोरगाट ने अपने शानदार कॅरियर में नहीं निभाई। भारतीय जड़ों वाले दक्षिण अफ्रीकी लोरगाट 2008 से 2012 तक इस पद पर रहे, श्रीलंका क्रिकेट के विशेष सलाहकार बने और अगले ही साल क्रिकेट साउथ अफ्रीका के सीईओ।

65 साल के लोरगाट पेशे से चार्टर्ड अकाउंटेंट हैं और दक्षिण अफ्रीका के प्रतिस्पर्धी घरेलू परिदृश्य में ईस्टर्न प्रोविंस और ट्रांसवाल के काबिल ऑलराउंडर रह चुके हैं। आईसीसी में कई चुनौतियां स्वीकारीं, जिनमें निर्णय समीक्षा प्रणाली की शुरुआत और भ्रष्टाचार निरोधी उपायों का विस्तार शामिल है। अपने देश में टी20 फ्रेंचाइजी लीग की कल्पना को साकार करने में अपने अनुभव और नजरिये का इस्तेमाल किया और बतौर सलाहकार पाकिस्तान सुपर लीग की नींव रखने में मददगार रहे। संपादित अंश:

भारत के साथ मैच का पाकिस्तान द्वारा चुनिंदा बहिष्कार करने के बारे में आपका क्या कहना है?

अगर सच में ऐसा होता है तो यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होगा। यह सुझाव ही एक नाकाम गवर्निंग बोर्ड की चेतावनी है, जिसे एक ताकतवर सदस्य ने स्ट्रक्चरली अपने कब्जे में कर लिया है, जिससे छोटे बोर्ड के पास जबरदस्ती की पावर का विरोध करने के लिए लगभग कोई सही रास्ता नहीं बचा है।

आईसीसी ने ऐसा माहौल बना दिया है, जहां ताकतवर सदस्यों की राजनीतिक सुविधा ही असल में भागीदारी नियम तय करती है। जब कोई एक बोर्ड बिना मंजूरी के चुनिंदा तौर पर अलग हो सकता है, तो यह इस बात की पुष्टि है कि अंतराष्ट्रीय क्रिकेट में जिम्मेदारियों का विभाजन असमान रूप से लागू होता है और वे सिद्धांतों के बजाय 'शक्ति' से तय होती हैं। इस लिहाज से, पाकिस्तान की धमकी - या फैसला- गवर्नेंस का एक गहरा संकट उभारता है, और धमकी भरे बहिष्कार को अलग राजनीतिक कदम के बजाय एक खराब और अन्यायपूर्ण व्यवस्था के लक्षण के तौर पर प्रस्तुत करता है।

यह एक बहुत बड़ी समस्या को दिखाता है जहां जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली बात है। ऐसा लगता है कि दुनिया भर के नेताओं ने निष्पक्षता, समानता और न्याय जैसी बातों को नजरअंदाज कर दिया है।

यह एक ऐसा मामला है जिसमें जियोपॉलिटिक्स को बाकी सब चीजों से ज्यादा अहमियत दी जा रही है। क्या आईसीसी इससे बच सकता था?

जियोपॉलिटिक्स को बहुत पहले ही क्रिकेट पर हावी होने दिया गया था। आईसीसी ने पैसे के लिए अपनी आजादी बेच दी, और एक सदस्य की मार्केट पावर को शेड्यूलिंग, होस्टिंग और पॉलिसी पर पॉलिटिकल कंट्रोल में बदलने दिया। अगर आईसीसी ने वूल्फ रिपोर्ट में सुझाए गए सुधारों को लागू किया होता - बोर्ड और वोटिंग स्ट्रक्चर, जरूरतों के हिसाब से फंडिंग और नैतिक सुरक्षा उपायों में, तो वह इस संकट को कम कर सकती थी, बजाय इसके कि वह एक ऐसे रेवेन्यू और गवर्नेंस मॉडल को मंजूरी दे जो दबदबे और प्रभुत्व को मजबूत करता है। गवर्नेंस सुधार से इनकार करके और राजनीतिक तथा कार्यकारी अथॉरिटी - चेयरमैन और सीईओ- को एक ही जगह केन्द्रित होने की छूट देकर आईसीसी ने लगभग यह पक्का कर दिया कि दबदबे वाले सदस्यों से जुड़ा कोई भी विवाद कभी भी जियोपॉलिटिक्स टकराव में बदल सकता है।

एक या चंद चुने हुए लोगों के प्रति यह पक्षपात जियोपॉलिटिक्स पाखंड को बढ़ावा देने वाला है, जिससे पाकिस्तान जैसे देशों को ऐसी स्थिति में धकेल दिया जाता है जो आईसीसी की कमज़ोर लीडरशिप में क्रिकेट के राजनीतिकरण को उजागर करती है। सच्ची निष्पक्षता के लिए जवाबदेही जरूरी है, न कि ऐसा भेदभावपूर्ण रवैया जो कुछ लोगों का पक्ष ले।

आपको लगता है कि एक मैच (भारत-पाकिस्तान) पर ज्यादा निर्भरता की भी इस संकट में भूमिका है?

मुझे ऐसा ही लगता है और इसके लिए आईसीसी ही जिम्मेदार है। भारत-पाकिस्तान मैच को आईसीसी के सारे इवेंट्स का सबसे कीमती हिस्सा बनाया गया, क्योंकि भारतीय उपमहाद्वीप का व्यावसायिक इकोसिस्टम और टेलीविजन दर्शक ग्लोबल ब्रॉडकास्ट रेवेन्यू का आधार हैं।

एक बार जब आईसीसी ने एक ऐसा मॉडल अपनाया जिसमें फ्लैगशिप इवेंट्स, होस्टिंग पैटर्न और यहां तक कि ग्लोबल कैलेंडर को भी ऐसे ब्रॉडकास्टर्स और एडवर्टाइजर्स के हिसाब से ढाला गया, तो इसने असल में एक ही गेम को वर्ल्ड क्रिकेट का फाइनेंशियल आधार बना दिया, जिससे पाकिस्तान के धमकी भरे बॉयकॉट जैसी कोई भी रुकावट बहुत ज्यादा असरदार हो गई। और यह भी तय था। एक मैच पर अति निर्भरता सीधे तौर पर एक ऐसे सिस्टम का नतीजा है, जो खेल में बराबरी के बजाय पावर को अहमियत देता है। वह एक मैच हटा क्या लिया जाता है, पूरे टूर्नामेंट का ढांचा ही बिगड़ जाता है।

इससे सामान्य अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट के बाजार पर क्या असर पड़ेगा?

व्यावसायिक पार्टनर्स ने पहले ही अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट के लिए कम वैल्यूएशन का संकेत दे दिया है। यह भी सच है कि फ्रेंचाइजी लीग के कारण अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट खतरे में है। इसके अलावा, आईसीसी टूर्नामेंट का डिजाइन, स्थान और उसकी आर्थिकी मुख्य रूप से कुछ प्रभावशाली सदस्यों के इर्द-गिर्द बने हैं और प्रतिस्पर्धी संतुलन पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

यह बहिष्कार न सिर्फ आईसीसी इवेंट्स पर बतौर एक असली वैश्विक प्रतिस्पर्धी भरोसा कम करेगा, बल्कि अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट की साख पर भी बट्टा लगेगा। ज्यादातर सदस्य पहले से ही 'खराब आर्थिक स्थिति' और सीमित होते अवसरों से परेशान हैं। किसी वैश्विक खेल प्रतिस्पर्धा के लिए यह सही नहीं हो सकता कि एक सदस्य को 38.5 प्रतिशत हिस्सा मिले, जबकि बाकी को गेम को आगे बढ़ाने की तो बात ही छोड़िए, सिर्फ जिंदा रहने के लिए भी उस रकम का एक छोटा सा हिस्सा मिले।

आपको लगता है कि इससे एशियन क्रिकेट काउंसिल (एसीसी) की नींव पर भी असर पड़ेगा?

साफ है कि एसीसी पर भी इन्हीं मुद्दों का असर पड़ेगा क्योंकि यह ऐसे इकोसिस्टम में काम करता है जहां यही असंतुलन मौजूद है। भारत के पास एक ऐसा जरूरी बाज़ार है जिस पर दूसरे एशियाई बोर्ड बहुत ज्यादा निर्भर हैं। बांग्लादेश को टी20 वर्ल्ड कप से हाल ही में बाहर करने और पाकिस्तान की धमकी भरी बॉयकॉट से एसीसी की नींव हिल जाएगी।

बांग्लादेश की अपने मैच दूसरी जगह ले जाने की कोशिश से यह संकेत मिला कि एशिया के अंदर भी, अगर सुरक्षा, संप्रभुता और समानता व्यावसायिक प्राथमिकताओं से टकराते हैं, तो उन पर समझौता संभव है, जिससे एक संतुलित और खुशहाल एशियाई गुट की किसी भी धारणा पर दबाव पड़ता है। ■

संडे नवजीवन
रविवार, 08 फरवरी, 2026 | www.navjivanindia.com

'अनछपी' किताब बनी गले की फांस

पेज एक का शेष

हालांकि यह अब भी स्पष्ट नहीं है कि मंजूरी देने से कब इनकार किया गया, लेकिन नरवणे को साफ तौर पर इसकी जानकारी नहीं दी गई है।

*

सेवारत और रिटायर्ड- दोनों तरह के सैन्य अधिकारियों को अपनी लिखी किसी भी किताब के लिए क्लीयरेंस लेना जरूरी होता है। ऑपरेशनल मामलों से जुड़ी किताबों की तीन स्तरों पर जांच होती है- आर्मी हेडक्वार्टर, रक्षा मंत्रालय और कैबिनेट सचिवालय।

'इंडिया टुडे' को दिए एक इंटरव्यू में, लेफ्टिनेंट जनरल के.जे.एस. 'टाइनी' ढिल्लों (रिटायर्ड)ने तीन संभावित स्थितियों की चर्चा की है। लेफ्टिनेंट जनरल ढिल्लों की किताब 'ऑपरेशन सिंदूरः द अनटोल्ड स्टोरी ऑफ इंडियाज डीप स्ट्राइक्स इनसाइड पाकिस्तान' सितंबर 2025 में पेंगुइन रैंडम हाउस से ऑपरेशन के ठीक तीन महीने बाद आई थी।

एक, अगर कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिलता है, तो किताब को मंजूरी मिल जाती है। दो, आपत्तियां उठने पर लेखक को अपना नजरिया समझाने के लिए बुलाया जाता है और संपादन के बाद मंजूरी दी जाती है। तीन, अगर किताब में राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने वाले ऑपरेशनल सीक्रेट्स हैं, तो मंजूरी नहीं मिलती है।

अपनी किताब के मामले में, ढिल्लों आर्मी हेडक्वार्टर में अधिकारियों से 30-40 बार मिले, कुछ वाक्य हटाए, कुछ नए जोड़े, और किताब रिकॉर्ड समय में क्लियर हो गई। तब से यह उपलब्ध है।

जनरल नरवणे इतने भाग्यशाली नहीं रहे, हालांकि दोनों के प्रकाशक एक ही हैं। लेफ्टिनेंट जनरल ढिल्लों का यह दावा सच नहीं लगता कि प्रकाशक ने मंजूरी के लिए मैन्युस्क्रिप्ट जमा नहीं की होगी। नरवणे ने साफ तौर पर कहा है कि किताब जमा कर दी गई थी और उसकी जांच जारी थी।

*

हालांकि सरकार के निर्देश "जो उचित समझो, वह करो" को बातों को घुमा देने वालों ने सेना को खुली छूट देने के तौर पर समझाया है, लेकिन इसका मतलब राजनीतिक जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ना है। सरकार राष्ट्रीय सुरक्षा के मामलों में पॉलिसी बनाने वाली सबसे बड़ी संस्था- कैबिनेट कमेटी ऑन सिक्योरिटी (सीसीएस) की बैठक बुलाने और सेना को साफ निर्देश देने में नाकाम रही। नरवणे पर फैसला छोड़कर और उसे मानने से इनकार करके, क्या राजनीतिक नेता खुद को बाद में इनकार करने की गुंजाइश दे रहे थे? ■

राज्य 360° पंजाब

चंडीगढ़

बांटो और वोट बटोरो का नया संस्करण

हरजिंदर

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी रविदास जयंती पर 1 फरवरी को अचानक ही जालंधर के सचखंड डेरा बल्लां पहुंचे तो उनकी इस यात्रा को आध्यात्मिक बताया गया। पंजाब में जिस तरह की राजनीतिक सक्रियता है, उसमें कोई इसे सीधी-सादी धार्मिक यात्रा नहीं मान रहा। प्रधानमंत्री का यह दौरा डेरा प्रमुख बाबा निरंजन दास को पद्मश्री सम्मान की घोषणा के कुछ ही दिन बाद हुआ है। इसी दौरे में आदमपुरा हवाई अड्डे का नामकरण संत रविदास पर किया गया। इस दौरे को पंजाब में भाजपा के पांव जमाने की कोशिश के तौर पर ही देखा जा रहा है।

पंजाब भाजपा का राजनीतिक मैदान कभी नहीं रहा। अकाली दल से अपना दशकों पुराना गठजोड़ तोड़ने के बाद से पार्टी राज्य में कोई कमाल नहीं दिखा सकी है। 2024 के आम चुनाव में पार्टी का वोट शेयर काफी सुधरा था लेकिन वह एक भी सीट जीत नहीं सकी थी। हाल ही में हुए स्थानीय निकाय चुनावों में भी भाजपा को कोई बहुत बढ़त नहीं मिली।

इसके बावजूद भाजपा ने पंजाब में अपने प्रयास जारी रखे हैं। अब वह सामाजिक गठजोड़ से अपने लिए जगह बनाने की कोशिश कर रही है। खासकर वह जाति और धर्म के आधार पर अपने लिए जगह बनाने की कोशिश में जुट गई है। पिछले कुछ समय में रविदासिया समुदाय पर उसने जिस तरह से फोकस किया है, उसकी रणनीति को समझा जा सकता है।

फोटो: गेटी इमेजेज

जयंती जालंधर में श्री गुरु रविदास की जयंती पर डेरा सचखंड बल्लां में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी

> सबसे बड़ी चिंता पंजाब की नाजुक सामाजिक शांति को लेकर है। राज्य को लंबे समय तक उस अव्यवस्था और तनाव से गुजरना पड़ा जिसकी जड़ में पहचान की राजनीति थी

रविदासिया पंजाब में मजहबी सिखों के बाद दूसरा सबसे बड़ा दलित समुदाय है। दोआबा क्षेत्र के तकरीबन 35 ऐसे विधानसभा चुनाव क्षेत्रों में इनकी आबादी सबसे ज्यादा है, कहीं-कहीं तो 30 फीसदी से ज्यादा मतदाता रविदासिया हैं। अन्य दलित समुदायों की तुलना में रविदासिया की आर्थिक स्थिति बेहतर है। उनका एक तबका छोटे-मोटे कारोबार करता है, और कुछ सरकारी और अन्य नौकरियों में हैं। उनकी एक प्रवासी आबादी भी है जो ब्रिटेन, कनाडा और इटली जैसे देशों में बसी है। परंपरागत रूप से रविदासिया कांग्रेस के मतदाता रहे हैं। एक छोटा सा हिस्सा कुछ समय तक बहुजन समाज पार्टी को भी वोट देता रहा। भाजपा ऐतिहासिक रूप से उनके बीच अनुपस्थित रही। इसीलिए उनके बीच भाजपा की सक्रियता लोगों का ध्यान खींच रही है।

जो प्रतीकात्मक काम किए जा रहे हैं, उससे इन कोशिशों को साफ समझा जा सकता है। हवाई अड्डे का नाम संत रविदास पर रखना, डेरा बल्लां प्रमुख को पद्मश्री सम्मान देना और फिर प्रधानमंत्री का दौरा - इन सबसे भाजपा यह संदेश देना चाहती है कि वह रविदासिया समुदाय को अहमियत दे रही है। इसमें पंजाब से अलग भी एक समीकरण जोड़ा जा सकता है कि प्रधानमंत्री मोदी के अपने निर्वाचनक्षेत्र वाराणसी में भी रविदासिया समुदाय के अच्छी-खासी आबादी है।

संघ परिवार और भाजपा काफी समय से डेरा बल्लां पर फोकस कर रहे हैं। केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह और आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत वहां की यात्रा कर चुके हैं। अमृतसर में रहने वाले राजनीति शास्त्री प्रोफेसर जगरूप सिंह सेखों के अनुसार, पार्टी काफी समय से चुपचाप इस समुदाय के रिटायर अफसरों और अन्य प्रभावी लोगों को संगठित कर रही है और उनके जरिये पंजाब के रविदासिया लोगों पर अपना असर बनाने की कोशिश कर रही है। ऐसे लोगों की साख और उनके प्रशासनिक अनुभवों के जरिये वह समुदाय में पैठ बना रही है।

इस रणनीति में भाजपा की सोच के साथ खड़े लोगों का कहना है कि पार्टी वह कर रही है जो राजनीतिक दल करता है- हाशिये के समुदाय में पहुंच बनाकर अपने सामाजिक आधार को बढ़ाना। लेकिन दूसरी तरफ आलोचक कहते हैं कि वह जाति और धर्म की दरारों को चौड़ा करके पंजाब के सामाजिक ताने-बाने को कमजोर कर रही है।

समाजशास्त्री प्रोफेसर मंजीत सिंह इस बात को और स्पष्ट ढंग से रखते हैं। वह मानते हैं कि इस तरह की कोशिशों से भाजपा लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचेगी लेकिन इसका वास्तविक चुनावी प्रभाव काफी सीमित होगा। उन्होंने संडे नवजीवन को बताया कि 'पार्टी के पास जो थोड़े बहुत शहरी वोट हैं, उनके अलावा वह देहाती इलाकों में गैर जाट और गैर सिख मतदाताओं का अपने पक्ष में ध्रुवीकरण करना चाहती है। लेकिन उसका आधार बहुत बड़ा नहीं है, इसलिए मुझे नहीं लगता कि इससे पंजाब का राजनीतिक परिदृश्य नाटकीय तौर पर बदल सकेगा।'

हाल ही में केन्द्र सरकार ने चंडीगढ़ और पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ में जिस तरह के बदलाव करने की कोशिश की, उससे भी पंजाब में काफी रोष है। इसे पंजाब के अधिकारों पर हमले की तरह देखा गया। कई राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि इसने सभी जातियों और समुदायों के लोगों को भाजपा से दूर करने का काम किया।

राजनीतिक प्रयासों से आगे कुछ वैचारिक स्थितियां हैं जो आगे जाकर भाजपा और रविदासिया समुदाय के बीच टकराव का कारण बन सकती हैं। तकरीबन डेढ़ दशक से बाबा निरंजन दास यह मांग कर रहे हैं कि रविदासिया को एक अलग धर्म का दर्जा दिया जाए। यह मांग संघ परिवार की वैचारिकता से सीधे टकराती है। संघ परिवार यह मानता है कि रविदासिया और यहां तक कि सिख भी वृहद हिन्दू समाज के ही हिस्से भर हैं। कई विश्लेषकों का मानना है कि इस विरोधाभास के चलते भाजपा और डेरा बल्लां के रिश्ते बहुत दूर तक जाने वाले नहीं हैं। एक वरिष्ठ सामाजिक विश्लेषक का कहना है, 'यह विरोधाभास बहुत बड़ा है, यह नहीं हो सकता कि आप किसी समुदाय से रिश्ते भी बनाएं और उसकी सबसे बड़ी धार्मिक मांग को नकार भी दें।'

लेकिन सबसे बड़ी चिंता पंजाब की नाजुक सामाजिक शांति को लेकर है। राज्य को लंबे समय तक उस अव्यवस्था और तनाव से गुजरना पड़ा जिसकी जड़ में पहचान की राजनीति थी। डर यह है कि भाजपा की 'बांटों और वोट बटोरो' वाली नीति पुराने घावों को हरा करके शांति को भंग कर सकती है।

फिलहाल तो भाजपा अपनी रविदासिया रणनीति से खुद को पंजाब में प्रासंगिक बनाए रखने की कोशिश कर रही है। 2027 का विधानसभा चुनाव जैसे-जैसे नजदीक आएगा, उसकी इस रणनीति का असर भी स्पष्ट होता जाएगा। ■

चुनाव में अल्पसंख्यक और महिलाओं का मुद्दा

बांग्लादेश में अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़ा नैरेटिव बड़ा जटिल, इसे सिर्फ धार्मिक आधार पर नहीं समझ सकते

सौरभ सेन

लक्ष्मीपुर निर्वाचन क्षेत्र में एक हिन्दू महिला ने बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार और पार्टी के संयुक्त महासचिव चौधरी एनी से सवाल किया कि जब भी कुछ होता है, उसका खामियाजा हमेशा हिन्दुओं को ही क्यों भुगतना पड़ता है? एनी ने कॉलेज लेक्चरर की बात धैर्य से सुनी और बड़े शांत स्वर में जवाब दिया कि उन्हें इलाके की ऐसी किसी घटना की जानकारी नहीं जिसमें हिन्दुओं को निशाना बनाया गया हो। फिर भी, वह किसी भी आशंका को दूर करने को तैयार हैं।

महिला के चेहरे पर मुस्कान तैर जाती है। वह कहती है, 'मैं यहां महफूज और खुश हूं; मुझे कोई दिक्कत नहीं। मैं पूरे देश के बारे में बात कर रही थी, सिर्फ अपने बारे में नहीं।' यह वीडियो, जिस पर बांग्लादेश में ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया, सोशल मीडिया पर बड़े पैमाने पर शेयर किया गया।

बांग्लादेश में हिन्दुओं की आबादी बामुश्किल आठ फीसद है और राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व हमेशा से न के बराबर रहा है। पिछले तीन चुनावों में ज्यादातर हिन्दू उम्मीदवारों को अवामी लीग ने मैदान में उतारा था। पिछले चुनाव में 17 हिन्दू उम्मीदवार जीते थे और तीन शेख हसीना की सरकार में कैबिनेट मंत्री बने। हसीना के देश से बाहर होने और अवामी लीग पर चुनाव में हिस्सा लेने पर रोक लगने के कारण, हिन्दुओं के प्रतिनिधित्व को लेकर संदेह बना हुआ था।

लेकिन आंकड़े बताते हैं कि जातीय संसद (राष्ट्रीय संसद) में जगह पाने के लिए चुनाव लड़ने वाले हिन्दुओं की संख्या 80 के आसपास है, यानी स्थिति पिछली बार से ज्यादा नहीं बदली। फर्क सिर्फ इतना है कि दूसरी पार्टियों ने भी हिन्दू उम्मीदवार उतारे। यहां तक कि जमात-ए-इस्लामी ने भी खुलना में एक हिन्दू उम्मीदवार, कृष्णा नंदी को उतारा है। उसके गठबंधन सहयोगी एनसीपी ने दो हिन्दुओं को टिकट दिया है जिसमें एक महिला है और जमात के अमीर (सर्वोच्च पदाधिकारी) शफीकुर रहमान ने दोनों के लिए प्रचार किया। रहमान ने कहा भी कि अगर नंदी चुने जाते हैं, तो हिन्दू 'जमाई आदोर' (दामाद पर लुटाए जाने वाले प्यार) को लेकर निश्चिंत हो सकते हैं।

सबसे ज्यादा चर्चित उम्मीदवारों में हैं ब्राह्मणबारिया निर्वाचन क्षेत्र से मनीषा चक्रवर्ती। बांग्लादेश कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीबी) की उम्मीदवार डॉक्टर चक्रवर्ती को अप्रत्याशित जगहों से समर्थन मिल रहा है, बेशक उनकी जीत की संभावना कम लग रही हो। बीएनपी के अल्पसंख्यक मोर्चे के नेता तरुण डे के लिए बुर्का पहने महिलाओं द्वारा किए गए प्रचार को भी मतदाताओं ने सिर-माथे लिया है।

12 फरवरी को होने वाले चुनाव का नतीजा 18 से 35 साल के अनुमानित 4.5 करोड़ पहली बार वोट देने वाले मतदाताओं पर निर्भर करेगा, जिनमें से कई पिछले चुनावों में मताधिकार का प्रयोग नहीं कर पाए थे। जबकि 6.28 करोड़ महिला मतदाता भी महत्वपूर्ण हैं, 300 सदस्यीय संसद में जगह पाने के लिए होड़ कर रहे 1,981 उम्मीदवारों में केवल 80 महिलाएं हैं।

कुल मिलाकर 88 अल्पसंख्यक उम्मीदवारों ने नामांकन भरा था। जांच के बाद चुनाव आयोग ने पांच के नामांकन रद्द कर दिए; तीन ने अपने नाम वापस ले लिए। कुल 2,071 उम्मीदवारों में से, 22 राजनीतिक पार्टियों ने अल्पसंख्यक समुदायों से 68 उम्मीदवारों को उतारा।

लगभग सभी प्रमुख राजनीतिक पार्टियों ने अल्पसंख्यक समुदाय से उम्मीदवारों को नामांकित किया है। सीपीबी ने सबसे ज्यादा 17 उम्मीदवार खड़े किए हैं। बीएनपी ने छह उम्मीदवार उतारे हैं जिनमें से दो वरिष्ठ नेता हैं- स्थायी समिति के सदस्य गायेश्वर चंद्र रॉय और वाइस चेयरमैन निताई रॉय चौधरी।

फोटो: गेटी इमेजेज

प्रचार चुनावी अभियान के दौरान बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी की महिला समर्थक

> जातीय संसद में जगह पाने के लिए चुनाव लड़ने वाले हिन्दुओं की संख्या 80 के आसपास है, यानी स्थिति पिछली बार से ज्यादा नहीं बदली। फर्क सिर्फ इतना है कि पिछली बार अवामी लीग ने ज्यादा हिन्दू उम्मीदवार उतारे थे

*

लेखक, राजनीतिक विश्लेषक और बीएनपी को सलाह देने वाले थिंक टैंक जी-9 के महासचिव डॉ. शखावत हुसैन सयंथा कहते हैं, 'बीएनपी जमात और वैसी अन्य पार्टियों की तरह अतिवादी रुख अपनाने से बचती है और मध्यमार्गी राजनीति पर चलती है। यह अल्पसंख्यकों को बराबर अधिकारों वाले नागरिक मानती है। बीएनपी की पूर्व चेयरपर्सन दिवंगत खालिदा जिया अक्सर 'अल्पसंख्यक' शब्द का इस्तेमाल करने में अपनी बेचैनी जाहिर करती थीं'।

खुलना-5 से जमात के उम्मीदवार मिया गुलाम पवार सवाल करते हैं, 'हमने एक हिन्दू उम्मीदवार को उतारा है। मैं उसके लिए कैंपेन करने जा रहा हूं। हिन्दू जमात को वोट देंगे। लोगों को यह यकीन दिलाने के लिए हमें और कितने सबूत देने होंगे कि हम सांप्रदायिक सद्भाव के पक्ष में हैं?' 'संडे नवजीवन' से बात करते हुए गुलाम ने कहा कि बांग्लादेश में हिन्दुओं पर अत्याचार की कहानी को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है।

बांग्लादेश में अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़ा नैरेटिव बड़ा जटिल है और इसे सिर्फ धार्मिक या सामाजिक आधार पर नहीं समझा जा सकता। पहले, बीएनपी पर अल्पसंख्यकों के प्रति हमदर्दी न रखने का आरोप लगा और इसके पक्ष में पार्टी कार्यकर्ताओं द्वारा हिन्दुओं पर किए गए हमलों के उदाहरण गिनाए जाते थे। 2001-2006 के अपने कार्यकाल के दौरान जमात के साथ गठबंधन करने के बीएनपी के फैसले ने इस धारणा को और मजबूत किया। प्रतिबंधित अवामी लीग को भारत में हिन्दुओं के प्रति ज्यादा सहनशील और मिलनसार माना जाता है।

हालांकि, जमीनी हकीकत इतनी आसान नहीं। हुसैन बताते हैं कि बांग्लादेश में भी, भारत की तरह, सत्ता में बैठे लोगों और पार्टियों ने अपने राजनीतिक लक्ष्यों को हासिल करने के लिए अल्पसंख्यकों का इस्तेमाल किया है। बीएनपी और अवामी लीग का टकराव अक्सर हिंसक हो जाता रहा। इस हिंसा के पीछे राजनीतिक पहचान और हित थे, न कि कोई धार्मिक कोण।

हुसैन ने कहा, 'गयेश्वर चंद्र रॉय पर हमले को बीएनपी नेता पर हमला बताया जाता है। हालांकि, जब किसी अवामी लीग नेता पर हमला होता है - खासकर अगर वह अल्पसंख्यक समुदाय से हो - तो मीडिया और आम बातचीत में इसे बीएनपी द्वारा अल्पसंख्यक समुदाय पर हमला बताया जाता है।'

*

बांग्लादेश में जमात जैसी इस्लामी पार्टी के उभरने से महिलाओं के सशक्तिकरण का सवाल और भी जटिल हो गया है। 22 जनवरी को चुनावी रैली में शफीकुर रहमान ने ऐलान किया, 'हम, मर्द-औरत मिलकर कल का बांग्लादेश बनाएंगे हम बहुत कुछ बर्दाश्त कर सकते हैं, लेकिन मां-बहनों की इज्जत पर कोई हमला बर्दाश्त नहीं करेंगे। महिलाओं के खिलाफ किसी भी तरह की हिंसा बर्दाश्त नहीं की जाएगी।'

भारत में बांग्लादेश पर नजर रखने वाले जिन लोगों को बदली हुई जमात पर भरोसा था, वे खुश थे। लेकिन रहमान को अपना रुख बदलने में वक्त नहीं लगा। उन्होंने कहा कि महिलाएं लीडरशिप की भूमिका नहीं निभा सकतीं। रहमान के वेरिफाइड एक्स अकाउंट से अब डिलीट कर दिए गए एक पोस्ट के स्क्रीनशॉट 31 जनवरी को वायरल हो गए। उस पोस्ट में कथित तौर पर दावा किया गया था कि महिलाओं का काम करने घर से बाहर निकलना नैतिक रूप से गलत है और इससे वे शोषण का शिकार होती हैं।

रहमान की टिप्पणियों को महिलाओं के प्रति नफरत का खुला इजहार बताते हुए बीएनपी की नेशनल इलेक्शन कमीशन कमेटी के प्रवक्ता महदी अमीन ने एक सोशल मीडिया पोस्ट में कहाः 'हमारी महिलाएं मेहनत करके, पसीने बहाकर सामान बनाती हैं और विदेशी मुद्रा कमाती हैं। बांग्लादेश के वस्त्र उद्योग की वैश्विक सफलता का बड़ा हिस्सा महिलाओं की वजह से है।'

रहमान की टिप्पणियां चुनावों में जमात के खिलाफ काम करेंगी। ढाका के एक पत्रकार ने बताया, 'पार्टी को 2001 में बेगम खालिदा जिया की सरकार का हिस्सा बनने में कोई दिक्कत नहीं हुई थी।'

इन सबके बीच, बांग्लादेश के सोशल रिसर्च ऑर्गनाइजेशन इनोविजन कंसल्टिंग ने 30 जनवरी को पीपल्स इलेक्शन पल्स सर्वे का तीसरा राउंड जारी किया, जिसमें पता चला कि बीएनपी दूसरी पार्टियों पर बढ़त मजबूत कर रही है। बीएनपी अपना आधार बनाए दिख रही है और उसे उन लोगों से भी समर्थन मिल रहा है जो पहले जमात या एनसीपी की तरफ झुके थे। इसके साथ ही वह आवामी लीग के मतदाताओं को भी अपनी ओर खींच रही है। हालांकि, सर्वे में शामिल 30 फीसद लोगों की पसंद का पता नहीं लगा। दूसरे शब्दों में, जमात से बीएनपी की तरफ वोटों का बड़ा झुकाव संभावित रूप से वापस भी जा सकता है। ■

सौरभ सेन कोलकाता में रहने वाले लेखक, विश्लेषक हैं।

प्रकाशकः पवन कुमार बंसल; संपादकः राजेश झा; पवन कुमार बंसल द्वारा दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली- 11002 की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रित। दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 और द्वारा आर. सी. मल्होत्रा, दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित।

हिन्दुत्ववादी राजनीति से जूझता केरला

वेल्लापल्ली नटेसन की राज्य में एझवा और नायर समुदायों के बीच गठबंधन बनाने की कोशिशें रंग दिखाती, इसके पहले ही बेरंग हो गई

के.ए. शाजी

फोटो: गेटी इमेजेज

प्रदर्शन पलक्कड़ में सबरीमला मंदिर में महिलाओं के प्रवेश का विरोध करते लोग और (इनसेट) पद्मभूषण से सम्मानित किए गए वेल्लापल्ली नटेसन

गणतंत्र दिवस पर, केन्द्र सरकार ने 89 साल के वेल्लापल्ली नटेसन को 'समाज सेवा' के लिए पद्म भूषण से सम्मानित किया। केरला विधानसभा के भावी चुनाव को देखते हुए इसके समय पर सवाल उठ रहे हैं।

कांग्रेस नेताओं और सिविल सोसाइटी समूहों ने इस आधार पर वेल्लापल्ली को पुरस्कार पर सवाल उठाए हैं कि एक तो वह खुद इन्हें सियासी औजार करार देते हुए खारिज कर चुके हैं। दूसरा, वेल्लापल्ली के खिलाफ सौ से ज्यादा आपराधिक मामले हैं, जिनमें से कई में कोऑपरेटिव बैंकों में भ्रष्टाचार और श्रीनारायण धर्म परिपालन योगम (एसएनडीपी) के फंड के दुरुपयोग के आरोप हैं।

जहां भाजपा ने इसपर खुलकर जश्न मनाया, वहीं मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन ने मंत्रियों वी. शिवनकुट्टी, साजी चेरियन और चिंता जेरोम जैसे पार्टी नेताओं के साथ वेल्लापल्ली को सार्वजनिक तौर पर बधाई दी। भाजपाई सोशल मीडिया पर 'एझवा गौरव' की बातें की गईं और पुरस्कार को इसके सबूत के तौर पर पेश किया गया कि भाजपा ने आखिर केरला में भरोसेमंद सामाजिक आधार हासिल कर लिया।

वेल्लापल्ली ने भी मौका ताड़ा और मुसलमानों और इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग (आईयूएमएल) पर निशाना साधते बयानों की झड़ी लगा दी। उन्होंने लीग पर 'परोक्ष तरीके से राज्य चलाने' का आरोप लगाया और यह दावा करते हुए कि 'मुस्लिम तुष्टीकरण' खतरनाक स्तर पर पहुंच गया है, चेतावनी दी कि केरला 'दूसरा पश्चिम बंगाल' बनता जा रहा है।

सिविल सोसाइटी समूहों ने इन टिप्पणियों की सांप्रदायिक और खतरनाक बताकर निंदा की, लेकिन सत्ता में बैठे लोगों की तरफ से कोई आवाज नहीं आई। यहां तक कि जब वेल्लापल्ली ने मुसलमानों पर हमले तेज किए, तब भी पिनाराई और अन्य माकपा नेता चुप रहे। भाजपा ने वेल्लापल्ली के बोलने के अधिकार का बचाव किया, और इस विवाद को हिन्दू आवाजों पर हमले का रंग दे दिया। अजीब नजारा है: हिन्दू समुदाय के एक भड़काऊ नेता का न सिर्फ हिन्दू दक्षिणपंथी समर्थन कर रहे हैं, बल्कि मार्क्सवादी वामपंथियों से भी उसे मौन समर्थन मिल रहा है।

इसे समझने के लिए वेल्लापल्ली के निजी सफर को देखना चाहिए। मध्य केरला में एक अमीर एझवा परिवार में जन्मे वेल्लापल्ली ने अपनी दौलत खास तौर पर शराब के कारोबार से बनाई और राज्य के प्रभावशाली शराब कारोबारियों में शुमार हो गए। एसएनडीपी में उनकी तरक्की में आर्थिक ताकत और संगठनात्मक नियंत्रण, दोनों शामिल थे और इसी से वह दशकों योगम पर हावी रहे।

स्कॉलर और सोशल एक्टिविस्ट सनी कपिक्कड़ कहते हैं, 'यह पृष्ठभूमि एक विडंबना दिखाती है। श्रीनारायण गुरु ने साफ तौर पर एझवा लोगों को शराब बनाने और इसकी बिक्री में शामिल होने के खिलाफ चेताया था। इसे सामाजिक बुराई माना था जो समुदाय को आर्थिक निर्भरता और नैतिक गिरावट में फंसाती है। फिर भी आज, गुरु की विरासत का संरक्षक एक ऐसा आदमी है जिसकी दौलत और ताकत उसी इंडस्ट्री में है जिसका गुरु ने विरोध किया था।'

*

जब वेल्लापल्ली नटेसन ने ओबीसी एझवा और ऊंची जाति के नायर के बीच एक बड़े गठबंधन की घोषणा की, तो उन्होंने अपने शब्दों को बहुत सोच-समझकर चुना। लंबे समय तक एसएनडीपी के महासचिव रहे वेल्लापल्ली ने इसे सभ्यतागत जरूरत बताया। गौरतलब है कि एसएनडीपी राज्य के सबसे शक्तिशाली सामाजिक-धार्मिक संगठनों में से एक है और 19वीं सदी के नेता श्रीनारायण गुरु की सुधारवादी विरासत को आगे बढ़ाने का दावा करता है। वेल्लापल्ली ने तर्क दिया कि केरला के हिन्दुओं को अंदरूनी मतभेदों को खत्म करके आबादी में बदलाव और अल्पसंख्यक समुदाय की बढ़ती ताकत का सामना करने को एकजुट हो जाना चाहिए।

इन आंकड़ों ने उनके दावे को काफी हद तक भरोसेमंद बना दिया। एझवा, जिन्हें केरला में सबसे बड़ा हिन्दू समुदाय माना जाता है, उनकी आबादी करीब 22-25 फीसद है और अगड़ी जाति नायर की 12-15 फीसद है। दोनों मिलकर राज्य की आबादी में एक तिहाई से ज्यादा हैं, जो एक ऐसी राजनीति में संभावित रूप से निर्णायक गुट बन जाता है जहां चुनाव अक्सर बहुत कम अंतर से तय होते हैं।

फौरन इसका राजनीतिक असर हुआ - विधानसभा चुनाव नजदीक देख पार्टियों ने अपनी रणनीति को उसी अनुरूप ढालना शुरू कर दिया। एसएनडीपी-नायर सर्विस सोसाइटी (एनएसएस) गठबंधन केरला के राजनीतिक नक्शे को बदल सकती है।

वेल्लापल्ली की अस्पष्ट राजनीतिक स्थिति उन्हें समझना थोड़ा मुश्किल बनाती है। हाल के सालों में, उन्होंने खुद को एक ऐसे इंसान के तौर पर पेश किया है जो हर जगह है, फिर भी कहीं नहीं है। उनकी परिवार द्वारा चलाई जाने वाली राजनीतिक पार्टी, भारत धर्म जन सेना (बीडीजेएस), जिसका नेतृत्व उनकी पत्नी प्रीति नटेसन और बेटे तुषार वेल्लापल्ली करते है, केंद्र में भाजपा के नेतृत्व वाले एनडीए का हिस्सा है। फिर भी, वेल्लापल्ली ने केरला के मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन को खुले तौर पर अपना करीबी विश्वासपात्र और साथी बताया है। साथ ही उन्होंने कांग्रेस पर, खासकर पिछले चार सालों से राज्य में विपक्ष के नेता वी.डी. सतीसन पर हमले तेज कर दिए हैं। वेल्लपल्ली के एकता के ऐलान की तुरंत एनएसएस महासचिव जी. सुकुमारन नायर ने हौसलाअफजाई की। दोनों नेता कांग्रेस विरोध पर एकजुट हैं और पार्टी द्वारा धर्मनिरपेक्षता और अल्पसंख्यक अधिकारों पर जोर देने से दोनों को एक-सी बेचैनी होती है।

फिर भी, यह गठबंधन ऐलान होते ही लगभग टूट गया। कुछ ही दिनों में, एनएसएस बोर्ड ने सार्वजनिक रूप से इस प्रस्ताव से खुद को अलग कर लिया, जिससे न सिर्फ वेल्लापल्ली के प्रोजेक्ट की सामाजिक कमजोरी सामने आई, बल्कि एनएसएस के अंदर राजनीतिक लामबंदी के प्रति संस्थागत विरोध भी जाहिर हो गया जिसे भाजपा-संघ के एजेंडे का विस्तार माना जा सकता है।

वेल्लापल्ली ने एनएसएस नेताओं पर जमकर हमला बोला और उन पर 'हिन्दू हितों के साथ विश्वासघात करने' का आरोप लगाया। एनएसएस ने इसपर खुद को न्यूट्रल कर लिया। भाजपा और माकपा, दोनों वेल्लापल्ली की चालों से चुनावी फायदा उठाने की उम्मीद कर रहे थे, लेकिन वे दर्शक बनकर रह गए।

वेल्लापल्ली जैसे नेता राजनीतिक पार्टियों के लिए इतने जरूरी क्यों हैं, इसका जवाब केरला की जनसांख्यिकी में है। ज्यादा आबादी वाले एझवा समुदाय के लोग ऐतिहासिक रूप से कम्युनिस्ट आंदोलन की रीढ़ रहे हैं। उन्होंने दशकों तक ट्रेड यूनियन, किसान आंदोलनों और सहकारी संस्थाओं पर दबदबा रखा। नायर समुदाय का ऐतिहासिक रूप से केरला की जाति व्यवस्था में खास स्थान रहा है, और जमीन के मालिकाना हक, शिक्षा और नौकरशाही में उनका प्रतिनिधित्व आबादी के अनुपात से कहीं ज्यादा रहा। कांग्रेस और, अब तो भाजपा में भी समुदाय की मजबूत मौजूदगी रही है।

शिक्षाविद जे. प्रभाष कहते हैं, 'ये दोनों समुदाय मिलकर राजनीतिक प्रभाव वाला एक बहुत बड़ा गुट बनाते हैं। एझवा या नायर वोटिंग पैटर्न में थोड़ा सा भी बदलाव दर्जनों सीटों पर नतीजों को बदल सकता है।'

यह हिन्दू एकजुटता के लिए वेल्लापल्ली की पहली कोशिश नहीं थी। इस बार जो अलग था, वह था तेजी से इसका बिखरना। राजनीतिक विश्लेषक एम.एन. करासेरी कहते हैं, 'यह बिखराव बहुत कुछ बताता है। अगर सुकुमारन नायर, जो बहुलवाद के समर्थक नहीं हैं, भी वेल्लापल्ली की योजना का समर्थन नहीं करेंगे, तो यह दिखाता है कि केरला में खुले तौर पर धार्मिक एकजुटता राजनीतिक रूप से कितनी खतरनाक है।'

वेल्लापल्ली का राजनीतिक सफर विरोधाभासों से भरा है। पहले, वह मुस्लिम लीग के करीब थे। बेहतर आरक्षण के लिए साथ-साथ आंदोलन किए और अल्पसंख्यक अधिकारों की बात की। सबरीमाला विवाद के दौरान जब सुप्रीम कोर्ट ने सभी उम्र की महिलाओं को मंदिर में जाने की इजाजत दी, तो वह राज्य सरकार के साथ मजबूती से खड़े रहे, फैसले का स्वागत किया, और यहां तक कि सरकार समर्थित केरला पुनर्जागरण आंदोलन के पदाधिकारी भी बन गए।

बाद में, उन्होंने ऐलान किया कि इस फैसले से 'हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुंची है' और महिलाओं के प्रवेश का समर्थन करने वाले एक्टिविस्टों पर 'हिन्दू विरोधी साजिश' में शामिल होने का आरोप लगाया। उन्होंने खुले तौर पर फैसले के खिलाफ भाजपा के नेतृत्व में हुए आंदोलन का समर्थन किया, जिससे वामपंथी सहयोगियों और दक्षिणपंथी समर्थकों, दोनों को विरोधाभासी संकेत मिले।

करासेरी का तर्क है- 'वेल्लापल्ली की राजनीति किसी स्थिर वैचारिक प्रतिबद्धता पर आधारित नहीं। यह मौके के हिसाब से कभी भाजपा से हाथ मिलाती है, तो कभी माकपा को गले लगाती है, जबकि कांग्रेस पर लगातार हमलावर रहती है। पिनाराई के लिए उसका समर्थन लेन-देन वाला है तो भाजपा के साथ नजदीकी रणनीतिक।।'

केरला की राजनीतिक संस्कृति इस तरह की असंगति के प्रति ज्यादा ही शंकालु है। करासेरी चेताते हैं, 'आप एक मार्क्सवादी मुख्यमंत्री के साथ गठबंधन करके हिन्दू सभ्यतावादी मोर्चे का नेतृत्व नहीं कर सकते।' शिक्षाविद और सामाजिक विचारक टी.एस. श्याम कुमार कहते हैं, 'असली खतरा इसमें नहीं है कि वेल्लापल्ली चुनाव जीतते हैं या नहीं, बल्कि इसमें है कि उनकी राजनीति केरला की नैतिक भाषा के साथ क्या कर रही है। श्री नारायण गुरु की विरासत को अपनाकर, वह उसे अंदर से खोखला कर रहे हैं।'

श्री नारायण गुरु एक ऐसे समाज के लिए थे जो जाति, धार्मिक डर और वंशानुगत प्रभुत्व से परे हो। बहिष्कार करते समय उनके नाम का इस्तेमाल करना, केरला की आधुनिक चेतना की नैतिक नींव के साथ धोखा है। ■

> वेल्लापल्ली की राजनीति किसी स्थिर वैचारिकी आधारित नहीं। यह मौके के हिसाब से कभी भाजपा से हाथ मिलाती है, तो कभी माकपा को गले लगाती है। आप एक मार्क्सवादी मुख्यमंत्री के साथ गठबंधन करके हिन्दू सभ्यतावादी मोर्चे का नेतृत्व नहीं कर सकते

केन्द्रीय बजट 2026-27

'सुधार' अभिजात्य वर्ग के लिए और व्यापार समर्थक

सच्चे सुधार यह सुनिश्चित करेंगे कि सभी को समान अवसर मिले, हाशिये पर पड़े समूहों को उचित अवसर मिले, अनौपचारिक श्रमिकों को सशक्त बनाया जाए और शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और सामाजिक सुरक्षा में सार्वजनिक निवेश को बढ़ावा मिले

अरुण कुमार

पहली फरवरी को 2026 के लिए पेश केन्द्रीय बजट और उससे एक दिन पहले के आर्थिक सर्वे में बार-बार एक शब्द का जिक्र आता है- सुधार। सर्वे के हर चैप्टर में इसका जिक्र है और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जोर देकर कहते हैं कि 'आज भारत रिफॉर्म एक्सप्रेस पर सवार है'। आखिर 'सुधार' का मतलब क्या है? क्या इसका मतलब नीति निर्माताओं की सोच की तरह ही संकीर्ण है, या फिर इसका आशय कुछ व्यापक है?

सर्वे में पहले से चल रहे सुधारों पर जोर दिया गया है-पीएलआई (प्रोडक्शन-लिंक्ड इंसेंटिव), उदार एफडीआई (फॉरेन डायरेक्ट इन्वेस्टमेंट), लॉजिस्टिक्स का आधुनिकीकरण, टैक्स को आसान बनाना, डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर का विस्तार, श्रम कानूनों में बदलाव, कौशल विकास अभियान, महिला श्रम बल की बेहतर भागीदारी, बुनियादी ढांचे का विस्तार, और कारोबार शुरू करने और बंद करने में आसानी। संदेह नहीं कि यह प्रभावशाली सूची है, जिसे हालिया आर्थिक वृद्धि और जीडीपी विकास को 7 फीसद के संभावित स्तर तक ले जाने का श्रेय दिया जाता है। लेकिन, इस मामले में सावधानी जरूरी है। क्या ये सुधार सच में नतीजे दे रहे हैं?

पहली बातः आईएमएफ (इंटरनेशनल मॉनेटरी फंड) ने बार-बार कहा है कि भारत के जीडीपी आंकड़ों में विश्वसनीयता की कमी है। इसने भारत के अर्थव्यवस्था को मापने के तरीके में तमाम खामियां गिनाईं, खासकर अनौपचारिक क्षेत्र के मामले में। ज्यादातर उपलब्ध आंकड़े औपचारिक क्षेत्र के हैं। इसलिए विकास की असली तस्वीर नहीं आती। सर्वे में इस बारे में कुछ नहीं कहा गया है। यह न तो जीडीपी आंकड़ों में गलतियों के बारे में कोई सफाई देता है और न यह साफ करता है कि सुधारों से अच्छी ग्रोथ हुई या नहीं।

दूसरी बातः दावों के बावजूद, जीडीपी में मैन्युफैक्चरिंग का हिस्सा घटकर तकरीबन 12 फीसद रह गया है। पीएलआई स्कीम अपने लक्ष्य से बहुत पीछे है, चार सालों में आवंटित फंड का मुश्किल से 10 फीसद ही बांटा गया। इसी तरह, कौशल विकास स्कीम भी लक्ष्य से पीछे है, कुशल मजदूरों को सही नौकरियां नहीं मिल रही हैं। ईएलआई (एम्प्लॉयमेंट लिंक्ड इंसेंटिव) के तहत शुरू की गई स्कीम, जिन्हें बड़े धूमधाम से घोषित किया गया था, मुश्किल से शुरू हो पाई हैं। इसे छिपाने के लिए, मामूली रोजगार और बिना वेतन वाले काम को गिना जा रहा है - ये ऐसे तरीके हैं जो आईएलओ की परिभाषा के खिलाफ हैं। एनएचएफएस आंकड़ों की गलत तुलना के आधार पर गरीबी कम होने का दावा किया जा रहा है।

तीसरी बातः बजट में घोषित टैक्स कटौती संगठित क्षेत्र और अमीर लोगों के हित में है। आयकर छूट सीमा बढ़ाकर 12.75 लाख रुपये करने से सिर्फ आबादी के शीर्ष 1-2 फीसद लोगों को ही फायदा होता है। मध्यम वर्ग, खासकर 7 लाख से 12 लाख रुपये की आय वाले लोगों को बहुत कम फायदा है। प्रत्यक्ष कर संग्रह में तकरीबन 2 लाख करोड़ रुपये की कमी आई है, जिससे शिक्षा और स्वास्थ्य पर सार्वजनिक खर्चे पर असर पड़ा है।

चौथी बातः जीएसटी में कटौती से मुख्य रूप से संगठित क्षेत्र को मदद मिलती है, यानी उन्हें जो सबसे ज्यादा जीएसटी देते हैं। इसका असर यह होता है कि उनके उत्पाद असंगठित क्षेत्र की तुलना में सस्ते हो जाते हैं। इसलिए, ज्यादा मांग संगठित क्षेत्र की ओर जाने से खपत बढ़ सकती है, लेकिन असंगठित क्षेत्र की आय पर इसका बुरा असर पड़ता है।

पांचवीं बातः भारत में काले धन की बड़ी अर्थव्यवस्था कर और नियामक ढांचे से बच जाती है जिससे सुधारों की प्रभावशीलता कम हो जाती है। जीडीपी के मुकाबले प्रत्यक्ष कर का अनुपात 6.5 फीसद है जो दुनिया के चंद सबसे कम है। इससे पता चलता है कि हमारे यहां काले धन का विस्तार कैसा है। यह संभावित विकास दर को भी कम करता है जिसे आर्थिक सर्वे में शामिल नहीं किया गया है।

छठी बातः नए लेबर कोड और मनरेगा को बदलने से किसानों और ट्रेड यूनियन वाले मजदूरों की पहले से ही कम मोलभाव की ताकत और कमजोर हो जाएगी। ये दोनों बदलाव पक्के तौर पर ईयू और अमेरिका के दबाव में किए गए हैं, क्योंकि दोनों ही भारतीय बाजारों में पहुंच चाहते हैं। कृषि उपज की कीमतें न्यूनतम समर्थन मूल्य (जिन फसलों के लिए घोषित किया गया है) से और नीचे गिर जाएंगी और गैर-खेती वाले उत्पादकों का मुनाफा कम हो जाएगा।

ये सुधार न सिर्फ बिजनेस, बल्कि अमीरों के हित साधने वाले हैं। हवाई यात्रा और महंगी डीलक्स ट्रेनों को बढ़ावा दिया जा रहा है, जबकि आम लोगों को ट्रेनों और बसों में ठूंस दिया जाता है। एलीट प्रोजेक्ट्स और निजीकरण के जरिये निजी कारोबार को बढ़ावा दिया जा रहा है। बजट में पांच यूनिवर्सिटी टाउन बनाने की घोषणा की गई - यह भी एक धोखा है, क्योंकि मौजूदा शीर्ष यूनिवर्सिटी को खत्म किया जा रहा है।

सरकार का लोकतंत्र विरोधी रवैया तब बिल्कुल साफ हो जाता है जब वह आरटीआई को कमजोर करने, नीतियों की जांच करने और नीति बनाने वाले ऊंचे पदों पर बैठे लोगों के जन-विरोधी रवैये को उजागर करने के लोगों के अधिकारों में कटौती करने का प्रस्ताव लेकर आती है। देश के अमीर लोग मजदूरों के कितने खिलाफ हैं, यह बात तब फिर से साफ हो गई जब हमारी संवैधानिक अदालत के एक बड़े अधिकारी ने खुलेआम फैक्ट्रियों के बंद होने और अपर्याप्त औद्योगीकरण के लिए मजदूरों को जिम्मेदार ठहराया। यह तर्क हमारे संविधान में सभी को जीने लायक मजदूरी देने के वादे को पूरी तरह नजरअंदाज करता है।

बजट रोजगार बढ़ाने के तरीके के तौर पर पर्यटन को बढ़ावा देता है। क्या इससे व्यावसायीकरण नहीं बढ़ेगा और स्थानीय संस्कृति खत्म नहीं हो जाएगी? सरकार बात तो स्वदेशी और आत्मनिर्भरता की करती है, लेकिन इसके साथ ही मुक्त व्यापार को भी बढ़ावा देती है। हमारे कमजोर अनुसंधान और विकास (आर एंड डी) आधार को देखते हुए, क्या यह आशंका नहीं पैदा होती कि भारत दलदल में फंस जाएगा जैसा कि पिछले मुक्त व्यापार समझौतों (एफटीए) के मामले में हुआ? चीन बिना एफटीए ही हम पर हावी हो जाता है। इस चुनौती का सामना करने के लिए शिक्षा पर ध्यान देने की जरूरत है।

साफ है, भारत मांग की समस्या से जूझ रहा है। इसके लिए सरकार को असमानता कम करने वाली नीतियां बनानी होंगी। लेकिन बजट ठीक इसका उल्टा करता है, उन्हीं को ज्यादा देता है जो ग्रोथ का फायदा उठा रहे हैं। हाशिये पर पड़े लोगों को अच्छी क्वालिटी की नौकरी चाहिए, लेकिन इस पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है क्योंकि ज्यादा संसाधन तो संगठित क्षेत्र में लगाए जा रहे हैं। भाई-भतीजावाद को बढ़ावा देने से निवेश का माहौल खराब होता है। जब शासक बिजनेस में अपने पसंदीदा लोगों को चुनते हैं, तो बाकी लोग असुरक्षित महसूस करते हैं। हैरानी नहीं है कि ज्यादा नेट वर्थ वाले लोग देश छोड़कर जा रहे हैं।

सच्चे सुधारों से सबको बराबर का मौका मिलेगा, हाशिये पर पड़े समूहों को सही मौके मिलेंगे, अनौपचारिक कामगारों को ताकत मिलेगी और शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में सरकारी निवेश बढ़ेगा। यहां तो एक दुःष्चक्र चल पड़ा है- जो लोग सिस्टम से फायदा उठा रहे हैं, वे और ज्यादा मांग रहे हैं और उन्हें मिल भी रहा है। दूसरी ओर, हाशिये पर पड़े लोग और बुरी स्थिति में पहुंच रहे हैं। यही बढ़ती असमानता की जड़ है और इसीलिए तथाकथित सुधार से होना-जाना कुछ नहीं। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

उत्सुकता पटना में केन्द्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण का बजट भाषण सुनते लोग

> जो लोग इस सिस्टम से फायदा उठा रहे हैं, वे और ज्यादा मांग रहे हैं- और उन्हें मिल भी रहा है। हाशिये पर पड़े लोग और ज्यादा हाशिये पर जा रहे हैं। तथाकथित सुधार एक जीरो-सम गेम है

अरुण कुमार जेएनयू में अर्थशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर और 'इंडियन इकोनॉमीज ग्रेटेस्ट क्राइसिस: इम्पैक्ट ऑफ द कोरोनावायरस एंड द रोड अहेड' किताब के लेखक हैं

सांप्रदायिकता से निपटने की राह दिखाता 'दीपक'

उन्हें चौतरफा प्रशंसा मिल रही है, जबकि प्रशासन उनके पीछे पड़ा है और उन्हें अपना परिवार अन्यत्र शिफ्ट कर देना पड़ा है

रश्मि सहगल/ नंदलाल शर्मा

इन दिनों, कम-से-कम उत्तराखंड में तो, दीपक को 'हीरो' माफिक इज्जत दी जा रही है। दीपक देहरादून से लगभग 110 किलोमीटर दूर कोटद्वार में जिम चलाते हैं। वह हनुमान-भक्त हैं। दीपक का मानना है कि इंसानियत सबसे बड़ा धर्म है और यह किसी से नफरत नहीं सिखाता। हिन्दू धर्मावलंबी मानते हैं कि हनुमान का जन्म ही राम काज के लिए हुआ है। लेकिन दीपक के साथ उलटबांसी चल रही है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुषांगिक संगठन- बजरंग दल हनुमान के नाम पर ही है। लेकिन इन दिनों बजरंग दल को हनुमान भक्त दीपक और उनके साथी न सिर्फ खटक रहे हैं बल्कि वह इनलोगों पर तरह-तरह से हमले भी कर रहा है।

कोटद्वार शहर में वकील अहमद की स्कूल यूनिफॉर्म की दुकान है। वकील की उम्र लगभग 70 साल है। उनकी दुकान के नाम में 'बाबा' भी है, हालांकि बोर्ड में इससे पहले वकील अहमद भी लिखा है। गणतंत्र दिवस 26 जनवरी को कुछ लोग इस दुकान में घुस आए और उनलोगों ने 'बाबा' नाम के इस्तेमाल पर आपत्ति जताते हुए बोर्ड से 'बाबा' नाम तत्काल हटाने को कहा। जिस वक्त यह सब चल रहा था, तब ही वहां पहुंचे हट्टे-कट्ठे दीपक कश्यप और उनके साथी विजय रावत ने भीड़ से आपत्ति की वजह पूछी। उनलोगों ने जब उनका नाम पूछा, तो दीपक ने तपाक से जवाब दिया: 'मोहम्मद दीपक'। किसी ने इन सबकी एक मिनट से छोटी ही वीडियो बना ली और वह सोशल मीडिया पर 'मोहम्मद दीपक' नाम की वजह से ही वायरल हो गया। इन दोनों साथियों के साहस ने पूरे देश का ध्यान खींचा।

वकील अहमद पार्किंसन रोग से पीड़ित हैं। वह करीब 40 साल से यह दुकान चला रहे हैं। उन्हें अब तक समझ में नहीं आया है कि 'बाबा' नाम से किसी धर्मविशेष का बोध कैसे हो जाता है? आखिर, बजरंग दल के लोगों ने यह नाम तुरंत हटाने को कहते हुए उनकी उम्र, अवस्था का खयाल न करते हुए अभद्र भाषा का उपयोग कैसे कर दिया? उधर, दीपक ने कहा कि 'मैं शुरू से यहीं रहा हूं और अधिकतर लोग मुझे मेरे नाम से जानते हैं। इसलिए, जब इनलोगों ने मुझसे मेरा नाम पूछा, तो मैं समझ गया कि ये कहीं दूसरे इलाके से आए हैं।' उन्होंने यह भी कहा कि यह भी साफ था कि उनलोगों का मकसद मुसलमान दुकानदार को परेशान करना था और इसी वजह से उन्होंने ऐसा नाम बताया जिससे उनकी पहचान मुस्लिम के तौर पर हो।

वैसे, यह भी जानने लायक है कि दीपक और वकील अहमद कोई पुराने परिचित वगैरह नहीं हैं। दीपक आसपास की दुकानों में अपने दोस्तों के साथ वैसे ही कभी-कभार आकर बैठते रहे हैं और इस बुजुर्गवार दुकनदार से वैसे ही उनकी दुआ-सलाम होती रही है। दीपक के पिता नहीं हैं और उनकी मां चाय बेचती रहती हैं जिन्होंने उन्हें सिखाया है कि अपने से बड़ों की इज्जत किया करो। 26 जनवरी के बाद 4 फरवरी को दीपक की मुलाकात वकील अहमद से हुई और उन्होंने कहा कि जिस तरह दीपक ने प्रतिरोध किया, उससे उन्हें साहस मिला है और उन्हें उम्मीद जगी है कि वह अपने शहर में अकेले नहीं हैं। लेकिन इस घटना की कीमत तो दोनों को ही चुकानी पड़ रही है। दुकान पर ग्राहकों की संख्या कम हो गई है जबकि दीपक को अपना जिम करीब एक हफ्ते तक बंद रखना पड़ा। कई एसयूवी पर सवार होकर देहरादून से आए लोगों ने 31 जनवरी को जिम और दीपक के घर के बाहर दीपक, उनकी पत्नी और उनकी मां को भद्दी-भद्दी बातें

बहादुरी कोटद्वार में लोगों से घिरे 'मोहम्मद' दीपक (इनसेट बाएं) और 'बाबा' दुकान के मालिक वकील अहमद

कहीं और यह सब उनलोगों को बेबसी में सुननी पड़ीं। यह सब बताते हुए वह रो पड़ते हैं और कहते हैं कि उनकी मां डरी हुई हैं, पत्नी भयभीत हैं। दुखद यह है कि पुलिस इस ओर कान नहीं धर रही जबकि शहर के हिन्दुओं का बड़ा वर्ग उन्हें ही दोषी ठहरा रहा है।

भले ही दूसरे शहरों से आकर लोग, खास तौर से विद्यार्थी आकर दीपक से मिलकर उन्हें समर्थन दे रहे हैं, उनके साथ सेल्फी ले रहे हैं, जगह-जगह के लोग उनकी प्रशंसा करते हुए फेसबुक पोस्ट कर रहे हैं, एक्स पर लिख रहे हैं, उनका भविष्य अनिश्चित है। उन्हें अपना परिवार अन्यत्र शिफ्ट कर देना पड़ा है। यह भी निश्चित नहीं है कि 'बाबा ड्रेसेस' में स्कूली बच्चों के कपड़े कब तक बेचे जा सकेंगे।

*

यह सब उत्पात करने वाली भीड़ का नेता हरिद्वार का एक व्यक्ति है जिसका इसी किस्म का उपयोग सत्तारूढ़ भाजपा करती रही है। बजरंग दल ने धमकी भी दी है कि दीपक को अपने किए को भुगतना होगा। पुलिस ने दीपक के खिलाफ ही धारा 115(2) (स्वेच्छा से चोट पहुंचाने), 191(1) (दंगा करने), 351(2) (आपराधिक तौर पर धमकी देने), 352 (शांति भंग करने) के अंतर्गत एफआईआर दर्ज कर ली है। यह एफआईआर कमल पाल की शिकायत पर दर्ज की गई है जिसमें कहा गया है कि दीपक, विजय और उनके दोस्तों ने लोगों के इस समूह के साथ दुर्व्यवहार किया और उन पर हमले किए जबकि जो वीडियो सार्वजनिक हैं, उनमें इसके उलट दिख रहा है। संतुलन दिखाने के खयाल से 30-40 अज्ञात लोगों की ऐसी भीड़ के खिलाफ भी एक एफआईआर दर्ज कर ली गई है जिनलोगों ने 31 जनवरी को दीपक का घर घेर लिया था। हालांकि देहरादून के लोगों और वहां की पुलिस के जरिये इनलोगों की पहचान आसानी हो सकती है, लेकिन इनके खिलाफ शायद ही कोई कार्रवाई हो।

वजह भी है। पुष्कर सिंह धामी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों, खास तौर से मुसलमानों को परेशान करने और उनके साथ मारपिटाई करने के लिए बजरंग दल और अन्य सांप्रदायिक संगठनों को खुली छूट दे रखी है। इस सरकार की अपनी तो कोई खास उपलब्धि है नहीं, इसलिए इसके पास अगले विधानसभा चुनाव में दिखाने के लिए कुछ है नहीं। पिछला चुनाव फरवरी 2022 में हुआ था। अगले साल जनवरी में हरिद्वार में कुंभ होना है, इस खयाल से एक चर्चा यह भी है कि चुनाव इसी साल हो सकते हैं। माना जाता है कि इसी वजह से सांप्रदायिक वैमनस्यता को हवा दी जा रही है।

वरिष्ठ पत्रकार त्रिलोचन भट्ट कहते हैं कि प्रधानतः पिछले दो महीने में सांप्रदायिक झड़पों की घटनाओं में बढ़ोतरी हुई है क्योंकि मुख्यमंत्री इनका उपयोग अंकिता भंडारी बलात्कार-हत्या कांड से ध्यान हटाने के लिए कर रहे हैं। बरसों तक मांग को दबाए रखने के बाद जनआंदोलन और विरोध की वजह से सरकार को इसकी सीबीआई जांच का आदेश देना ही पड़ा। भट्ट कहते हैं कि लोगों को इस सरकार पर भरोसा नहीं है क्योंकि यह जांच एक ऐसे पर्यावरणविद अनिल जोशी द्वारा दर्ज एफआईआर के आधार पर हुई है जिनका इस मामले से कोई लेना-देना नहीं है।

अंकिता भंडारी के मां-पिता ने इस मामले को दबाने में प्रमुख भाजपा नेताओं की भूमिका की जांच के लिए अतिरिक्त एफआईआर दर्ज करने की मांग की थी, पर वह पूरी नहीं हुई। भट्ट कहते हैं कि इस मांग पर जोर देने के लिए 8 फरवरी को पंचायत भी बुलाई गई है। सीपीआई (माले) के राज्य सचिव इंद्रेश मैखुरी भी कहते हैं कि इस मामले की सुप्रीम कोर्ट के जज की निगरानी में जांच की मांग से ध्यान हटाने के लिए राज्य में सांप्रदायिक आग फैलाई जा रही है।

वैसे भी, 2025 में सबसे ज्यादा नफरती भाषण देने के मामले में मुख्यमंत्री धामी सबसे आगे रहे हैं। इंडिया हेट लैब द्वारा जारी सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ ऑर्गेनाइज्ड हेट की रिपोर्ट के मुताबिक, धामी ने बीते साल कुल 71 नफरती भाषण दिए। मुख्यमंत्री अपने भाषणों में 'लैंड जिहाद', 'लव जिहाद', 'मस्जिद जिहाद', 'मजार जिहाद', 'थूक जिहाद' जैसे जुमलों का बार-बार इस्तेमाल करते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, उत्तराखंड में 2025 में नफरती भाषण की घटनाएं 138 प्रतिशत बढ़कर 155 हो गईं, जबकि 2024 में इनकी संख्या 65 थी। लेकिन अपने इस काम के लिए यह कहते मुख्यमंत्री अपनी पीठ थपथपाते हैं कि 'अगर संस्कृति, परंपरा और डेमोग्राफी की रक्षा करना हेट स्पीच है, तो मुझे नंबर वन होने पर गर्व है।'

इन सबके मद्देनजर ही सामाजिक कार्यकर्ता चारु तिवारी का कहना है कि इस किस्म का सरकारीं संरक्षण न होता, तो कोटद्वार वाली घटना नहीं होती। कोटद्वार में वकील अहमद की दुकान पर उत्पात की घटना तो 26 जनवरी को हुई, पर दीपक के घर और उनके जिम पर उग्र हिन्दूवादी भीड़ 31 जनवरी को पहुंची। इसे महज संयोग नहीं मानना चाहिए कि उस दिन मुख्यमंत्री धामी भी शहर में ही थे। वह बताते हैं कि इस भीड़ के आगे-आगे पुलिस जीप चल रही थी और जिम से पुलिस स्टेशन बिल्कुल पास में है। वह पूछते हैं, 'राजनीतिक संरक्षण न होता, तो यह भीड़ तीन-चार घंटे किस तरह उत्पात मचाए रखती?' ■

बजरंग दल ने धमकी भी दी है कि दीपक को अपने किए को भुगतना होगा। पुलिस ने दीपक के खिलाफ ही विभिन्न धाराओं के अंतर्गत एफआईआर दर्ज कर ली है। संतुलन दिखाने के खयाल से 30-40 अज्ञात लोगों की भीड़ के खिलाफ भी एक एफआईआर दर्ज कर ली गई है

क्यों मणिपुर को समझना नहीं आसान

न तो किसी समुदाय को 'निर्दोष पीड़ित' करार देने और न ही पहचान की राजनीति से समस्या हल होने वाली है

नंदिता हक्सर

कुकी-जो भाजपा विधायक नेमचा किपगेन के मणिपुर के उपमुख्यमंत्री के तौर पर शपथ लेने के एक दिन बाद 5 फरवरी को राज्य के चुराचांदपुर और तुइबोंग में विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए। कुकी-जो समुदाय के कई लोगों ने इसे एक लिखित राजनीतिक समझौते के बिना सरकार से बाहर रहने के सामूहिक फैसले का धोखा माना। कुकी स्टूडेंट्स ऑर्गनाइजेशन ने 6 फरवरी को 24 घंटे के बंद का आह्वान किया और आगे भी विरोध प्रदर्शनों की घोषणा की।

जो लोग मणिपुर की सांस्कृतिक बारीकियों से वाकिफ नहीं हैं, वे 4 फरवरी को इंफाल राजभवन में हुए शपथ ग्रहण समारोह में छिपे प्रतीकों को समझ नहीं पाए होंगे। युमनाम खेमचंद सिंह ने मणिपुर के नए मुख्यमंत्री के तौर पर शपथ ली, और किपगेन और लोसी दिखो ने उप-मुख्यमंत्री के तौर पर। सिंह मैतेई हैं, किपगेन कुकी-जो समुदाय की महिला हैं और दिखो माओ नगा हैं।

यह पहचान की राजनीति का ताजातरीन उदाहरण है जिसे बिना किसी भविष्यसम्मत सोच के बढ़ावा दिया जा रहा है। सोच ऐसी होनी चाहिए थी जो लंबे समय से उलझी हिंसा की गांठों को सुलझा सके। लेकिन तीन प्रमुख समुदायों से एक मुख्यमंत्री और दो उप-मुख्यमंत्री नियुक्त करना कोई समाधान नहीं, क्योंकि मणिपुर में समस्या जातीय संघर्ष से कहीं ज्यादा गहरी है।

*

जब 2023 में मणिपुर सुर्खियों में था, तब ज्यादातर भारतीय इस प्रदेश, इसके भूगोल और आबादी के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानते थे, उसके सदियों पुराने जटिल इतिहास के बारे में तो बिल्कुल नहीं। मीडिया ने इस संघर्ष को मैतेई और कुकी-जो के बीच जातीय संघर्ष या फिर पहाड़ी जनजातियों और मैदानी लोगों के बीच संघर्ष के तौर पर रिपोर्ट किया। एक तरह से यह सही था, क्योंकि ज्यादातर मैतेई इंफाल घाटी में रहते हैं, जबकि कुकी-जो आदिवासी समुदाय आस-पास की पहाड़ियों पर। संघर्ष का तात्कालिक कारण कुकी-जो और नगा- दोनों जनजातियों की मैतेई लोगों को अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में शामिल किए जाने पर आपत्ति थी।

हालांकि, यह सपाट-सी कहानी, संघर्ष के पहले कुछ दिनों में ही गलत साबित हो गई। संघर्ष के पहले तीन दिनों में घाटी में 300 से ज्यादा मैतेई चर्चों को मैतेई चरमपंथी समूहों ने ही जला दिया था। इसराइली मीडिया ने भारत के बेनी मेनाशे समुदाय के संकट में होने की खबर छापी। 'शावेई इसराइल' एक एनजीओ है जो यहूदी समुदायों की 'खोई हुई जनजातियों' को इमराइल लौटने में मदद करता है। उसके मुताबिक, बेनी मेनाशे जनजाति के 1,000 से ज्यादा सदस्य, जो उनकी कुल आबादी का लगभग 20 फीसद हैं, हिंसा में विस्थापित हो गए। समुदाय के एक सदस्य की मौत हो गई, एक को सीने में गोली लगी और उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया। इमराइल से मिली रिपोर्टों के मुताबिक, दो सिनेगॉग और मिकवेह (धार्मिक स्नानघर) जला दिए गए।

अगर यह संघर्ष सच में मैतेई और कुकी-जो समुदायों के बीच होता, तो मैतेई चरमपंथी समूहों ने मैतेई महिला पुलिस अधिकारी (थौनाओजम बृंदा) पर हमला क्यों किया, जिसने राज्य में नार्को-टेररिज्म के रिश्तों का खुलासा किया था और आरोप लगाया था कि इस अवैध व्यापार को राजनीतिक संरक्षण मिला हुआ है?

यह समझना भी मुश्किल है कि मीडिया रिपोर्ट्स में कुकियों को अपने ही देश में शरणार्थी क्यों बताया जाने लगा। कुछ मीडियाकर्मियों ने अलग-अलग घटनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया। संदेह नहीं कि उनमें से हर एक घटना भयानक थी, लेकिन कोई भी एक घटना संघर्ष की असली प्रकृति और उसके कारणों को नहीं समझा सकती थी।अब जब मणिपुर सुर्खियों में नहीं रहा, तो लोग इसे काफी हद तक भूल गए हैं। हालांकि, मणिपुर में रहने वाले लोग अब भी हिंसा का सामना कर रहे हैं। हालांकि मई 2023 के संघर्ष के दौरान सबसे ज्यादा नुकसान कुकी-जो समुदाय को हुआ, लेकिन सबसे जरूरी बात यह समझने की है कि किसी भी एक समुदाय को 'निर्दोष पीड़ित' नहीं दिखाया जा सकता।

पहले, राज्य में हिंसा भारतीय सुरक्षा बलों- इनमें सेना भी शामिल थी- और स्थानीय उग्रवादी समूहों के बीच होती थी। आज, उग्रवादी समूह आपस में लड़ रहे हैं और भारतीय सशस्त्र बलों से भी। राज्य में बड़ी मात्रा में बेहिसाब हथियार और गोला-बारूद आ रहे हैं जिससे हिंसा आम बात हो गई है।

*

राजनीतिक पार्टियों, सशस्त्र समूहों और सिविल सोसायटी संगठनों को मणिपुर में पहचान की राजनीति को समाधान के तौर पर देखना बंद कर देना चाहिए। हर पहचान को, व्यावहारिक और प्रतीकात्मक रूप से, औजार की तरह इस्तेमाल किया गया और हालात इसलिए भी मुश्किल हो गए कि इसे सशस्त्र समूहों का समर्थन प्राप्त है, जो न केवल अत्याधुनिक हथियारों से लैस हैं, बल्कि इन्हें चलाने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। पहचान की राजनीति प्रशासन में भी घुस गई है, जो इसकी वजह असम राइफल्स और मणिपुर पुलिस के बीच संघर्ष को बताता है।

मणिपुर में सक्रिय सशस्त्र गुटों की सही संख्या का पता लगाना मुश्किल है, लेकिन हालिया रिपोर्ट्स में 5-10 बड़े गुटों का जिक्र है, जिनमें यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फ्रंट, पीपल्स लिबरेशन आर्मी, कांगलेइपाक कम्युनिस्ट पार्टी, कांगलेई यावोल कानबा लुप और पीपल्स रिवॉल्यूशनरी पार्टी ऑफ कांगलेइपाक शामिल हैं। ये समूह 2023 की हिंसा के बाद और भी ज्यादा सक्रिय हो गए हैं। फिर, अरामबाई तेंगगोल और मैतेई लीपुन जैसे विजिलेंटे ग्रुप भी हैं। इनके अलावा, करीब 30 कुकी सशस्त्र गुट हैं, जिनमें कुकी नेशनल आर्मी, जोमी रिवॉल्यूशनरी फ्रंट और चिन कुकी रिवॉल्यूशनरी फ्रंट शामिल हैं।

भारत सरकार के पास मणिपुर में उग्रवाद से निपटने के लिए कोई व्यापक नीति नहीं दिखती। संघर्षविराम समझौतों या शांति वार्ता के दौरान, सशस्त्र गुटों को जैसे अपनी स्थिति मजबूत करने, ज्यादा कैडर भर्ती करने और ज्यादा हथियार खरीदने की छूट मिली हुई थी।

विरोध मणिपुर में तत्कालीन मुख्यमंत्री एन बीरेन सिंह के घर के पास आगजनी

मामले को और जटिल बना देता है मणिपुर में उग्रवाद से निपटने में इंटेलिजेंस एजेंसियों का अहम भूमिका निभाना। इनके काम में पारदर्शिता और जवाबदेही जैसी कोई चीज नहीं। सोशल मीडिया के जमाने में, पारदर्शिता की इस कमी के बेहद बुरे नतीजे हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक रिपोर्ट, जो कथित तौर पर लीक इंटेलिजेंस पर आधारित थी, में कहा गया था कि 'ड्रोन-आधारित बम, प्रोजेक्टाइल, मिसाइल और जंगल युद्ध में प्रशिक्षित 900 से ज्यादा कुकी उग्रवादी म्यांमार से मणिपुर में घुस आए हैं।'

16 सितंबर 2024 का एक नोट, जिस पर IMMEDIATE-No. 1/25/2024-CM लिखा था, मणिपुर के पुलिस महानिदेशक को भेजा गया था और जिस पर मुख्यमंत्री के सचिव, निंगथौजम जेफ्री का दस्तखत था, लीक हो गया। यह सोशल मीडिया पर वायरल हो गया। अधिकारियों ने शुरू में लीक की बात मानी, लेकिन बाद में इसकी सच्चाई से इनकार कर दिया। इससे अटकलें लगने लगीं कि यह बड़ी साजिश का हिस्सा था।

*

दूसरा कारण है कि मणिपुर उत्तर-पूर्व में स्थित है, जो इसे भू-राजनीतिक रूप से संवेदनशील क्षेत्र बनाता है। म्यांमार, चीन और बांग्लादेश में होने वाले घटनाक्रमों का राज्य पर सीधा असर पड़ता है। हालांकि मणिपुर की सीमा बांग्लादेश से नहीं लगती, लेकिन वहां हर क्षेत्रीय अस्थिरता यहां की स्थिति को और खराब करती है।

कुछ सशस्त्र मणिपुरी समूहों के नेताओं ने चीन में शरण ले रखी है। नतीजा है कि चीन-म्यांमार सीमा के पास अवैध बाजारों से मणिपुर के विद्रोहियों को हथियारों की आपूर्ति हो रही है। एक रिपोर्ट के मुताबिक, '2025 के शुरू से म्यांमार ने चीनी सुरक्षा कंपनियों को अपने यहां काम करने की अनुमति दे रखी है, जिससे चीन द्वारा भारत की सीमाओं की निगरानी करने, विद्रोही गुटों की मदद करने और मणिपुर समेत पड़ोसी राज्यों में आतंकवाद विरोधी अभियानों में खलल डालने का डर बढ़ गया है। ऐतिहासिक रिपोर्टें म्यांमार के काचिन विद्रोहियों जैसे गुटों के जरिये उत्तर-पूर्व में सक्रिय उग्रवादियों को चीनी सहायता की पुष्टि करती हैं।'

फिर आता है मातृभूमि से जुड़ा संघर्ष। कुकी सशस्त्र समूह ऐसे नक्शे बनाते हैं जिनमें नगा-आबादी वाले बड़े इलाके शामिल होते हैं, जिससे नगा गुस्सा जाते हैं; मैतेई ऐसे राज्य की कल्पना करते हैं जिसमें पहाड़ शामिल हैं, और दावा करते हैं कि उन्होंने पहले नगाओं पर राज किया था, यह भी एक वजह है नगाओं के गुस्से का; जबकि नगाओं का कुकियों को 'शरणार्थी' कहना दोनों समुदायों में झड़पों का बड़ा कारण है।

'मयंग' समुदाय यानी मारवाड़ी जैसे गैर-मंगोल जिन्हें मणिपुर में बसे दशकों बीत चुके हैं, इन सभी काल्पनिक मातृभूमि से आजिज आ चुके हैं क्योंकि उन्हें किसी में भी शामिल नहीं किया गया है। और मणिपुर के मुसलमान? उनकी भी अपनी एक काल्पनिक मातृभूमि है।

भारत सरकार और इंटेलिजेंस एजेंसियों की सालों की 'बांटो और राज करो' की नीति ने यह पक्का कर दिया है कि इन गुटों के बीच कोई एकता न हो। इनके आपसी झगड़े तो पहले भी होते थे, लेकिन अब जिस तरह के जानलेवा हालात हैं, पहले कभी नहीं थे। ■

मणिपुर में भले ही नई सरकार आ गई हो, भारत सरकार और इंटेलिजेंस एजेंसियों की सालों की 'बांटो और राज करो' की नीति ने यह पक्का कर दिया है कि मणिपुर के संघर्षरत गुटों के बीच कोई एकता न हो

नंदिता हक्सर मानवाधिकार कार्यकर्ता हैं जो लंबे समय से पूर्वोत्तर से जुड़ी हुई हैं। उनकी नवीनतम किताब है: शूटिंग द सनः ह्वाई मणिपुर वाज एनगल्फड बाय वायलेंस एंड द गवर्नमेंट रिमेन्ड साइलेंट (स्पीकिंग टाइगर, 2023)

डील से गहरा हो जाएगा किसानी का संकट

कहना कठिन है कि सरकार ने अमेरिका की कौन-कौन सी शर्तें मान ली हैं। लेकिन यह तय है कि अपने संकल्प से मोदी सरकार पीछे हटी है

योगेन्द्र यादव

जिसका डर था, वही हुआ। इन पंक्तियों का लेखक पिछले कुछ समय से बार-बार यह आगाह करता रहा है कि चाहे मोदी सरकार कुछ भी कहे, ट्रंप इसमें कामयाब होंगे कि वह भारत सरकार को ट्रेड डील पर मजबूर करें। प्रचार जो भी हो, इस डील में कृषि को शामिल किया जाएगा। पिछले कई महीने से दरबारी मीडिया फैला रहा था कि मोदी ने अमरीका के सामने झुकने से इनकार कर दिया। अगस्त में प्रधानमंत्री ने छाती ठोंक कर कहा था कि किसान, पशुपालक और मछुआरे उनकी सर्वोच्च प्राथमिकता हैं, उनके हितों से कोई समझौता नहीं होगा। यूरोपीय यूनियन से हुए व्यापार समझौते में कृषि को बाहर रखने पर भी यही प्रचार हुआ कि मोदी किसान के हितों की रक्षा कर रहे हैं।

लेकिन अंततः वही हुआ जो होना था। भारत-पाकिस्तान में युद्ध विराम की तरह इस बार भी भारत की जनता को पहली खबर अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप से मिली। अभी प्रधानमंत्री ने मुंह नहीं खोला है और भारत सरकार का औपचारिक बयान नहीं आया है। लेकिन ट्रंप का बयान साफ तौर पर जिक्र करता है कि डील में कृषि को शामिल किया गया है। इसकी पुष्टि अमेरिका की कृषि मंत्री (वहां "कृषि सचिव") ब्रुक रोलिंस के बयान से हुई है। उन्होंने अमेरिका के किसानो को बधाई देते हुए लिखा है कि राष्ट्रपति ट्रंप ने अब उनकी फसलों के लिए भारत की मंडियों के दरवाजे खोल दिए हैं।

जरूर अब भारत सरकार की तरफ से लीपा पोती की कोशिश शुरू हो जाएगी। लेकिन दरबारी मीडिया के प्रचार में आने से पहले कुछ बुनियादी तथ्यों पर गौर करना बेहतर होगा। पिछले कई दशकों से सत्ता में चाहे जो भी दल हो, भारत सरकार की नीति यह रही है कि कृषि को अंतराष्ट्रीय व्यापार समझौतों से बाहर रखा जाएगा ताकि किसान के हितों की रक्षा की जा सके। भारत के किसान को विदेशी व्यापार से खतरा इसलिए नहीं है कि भारत का किसान निकम्मा या अक्षम है। दरअसल दुनिया के सब बड़े कृषि उत्पादक देश अपने किसान को भारी सब्सिडी देते हैं जिसके चलते वे विश्व बाजार में अपना माल सस्ता बेच सकते हैं। इसके उलट भारत सरकार किसान को जितना देती है, उससे ज्यादा उसकी जेब से निकाल लेती है। तकनीकी भाषा में कहें तो भारत में किसान को 'नकारात्मक सब्सिडी' मिलती है। इसलिए जिन फसलों का भारत में पर्याप्त उत्पादन होता है, उस पर आयात शुल्क लगाकर भारत सरकार किसान को विदेशी माल के हमले से बचाती है। इसी नीति के चलते पिछले वर्षों में जितने भी विदेशी व्यापार समझौते हुए, उसमें से कृषि उत्पादों को बाहर रखा गया। हालांकि यूरोपीय यूनियन के साथ प्रस्तावित समझौते में प्रोसेस्ड फ़ूड तो अनुमति दी गई है जिसका असर आखिर हमारे किसानों पर पड़ सकता है।

लीपापोती भारत-अमेरिका व्यापार समझौते के बारे में लोकसभा में जानकारी देते वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल

ट्रंप ने भारत सरकार को इस नीति को पलटने के लिए मजबूर कर लिया है। शुरू से ही अमेरिका के वार्ताकारों की नजर भारत के कृषि पदार्थों के बाजार पर थी। अमेरिका दुनिया भर में मक्का, सोयाबीन और कपास के सबसे बड़े उत्पादकों में है। पिछले कुछ साल में उसका उत्पादन तो बढ़ा है लेकिन चीन ने मक्का और सोयाबीन की खरीद घटा दी है। पिछले साल अमेरिका के वाणिज्य विभाग की एक रिपोर्ट ने इस फालतू उत्पादन की खपत के लिए भारत को एक बड़े स्रोत के रूप में चिह्नित किया था। उनके लिए अड़चन यह थी कि भारत का आयात शुल्क बहुत ज़्यादा था और अमेरिका की अधिकांश मक्का और सोयाबीन जेनेटिकली मॉडिफाइड (जीएम) हैं जिस पर भारत में प्रतिबंध है। अमेरिका दूध और दुग्ध उत्पाद भी भारत को बेचना चाहता है, लेकिन यहां भी शुल्क के अलावा भारत की यह शर्त है कि दूध जिस जानवर का हो, उसे मांसाहारी पदार्थ न खिलाए गए हों। अमेरिका इन सब शर्तों से मुक्ति चाहता था।

> भारत सरकार की नीति यह रही है कि कृषि को अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौतों से बाहर रखा जाएगा ताकि किसान हितों की रक्षा की जा सके। लेकिन साफ लग रहा है कि ट्रंप ने भारत सरकार को इस नीति को पलटने के लिए मजबूर कर लिया है

अभी तक समझौते के प्रावधान सार्वजनिक नहीं हुए है, इसलिए यह कहना कठिन है कि भारत सरकार ने इनमें से कौन-कौन सी शर्तें मान ली हैं। लेकिन इतना तय है कि कृषि को शामिल न करने के संकल्प से मोदी सरकार पीछे हटी है। यह भी तय है कि बादाम और सेब जैसी फसलों का बड़े पैमाने पर आयात कुल जाएगा और इनका उत्पादन करने वाले किसानों को झटका लगेगा। मोटे तौर पर यह भी कहा जा सकता है कि इसकी पहली मार मक्का, सोयाबीन और गन्ना किसानों पर पड़ेगी। पिछले कुछ साल में देश में मक्का और सोयाबीन का उत्पादन बढ़ा है और किसान को उसका दाम भी बेहतर मिला है। अमेरिका का सस्ता मक्का और सोयाबीन आयात होने से भारतीय बाजार में उसका दाम गिरेगा। ऐसा कपास के साथ शायद न हो, क्योंकि पिछले कुछ साल से कपास का उत्पादन घटा है और हमें कपास विदेश के आयात करनी पड़ती है। लेकिन इसका अप्रत्यक्ष नुकसान गन्ना किसानों को होगा। संभावना यह है कि मक्का और सोयाबीन में जीएम फसलों पर लगे प्रतिबंध से बचने के लिए सरकार इनका तेल और एथनॉल में प्रयोग करने की अनुमति दे सकती है। फिलहाल देश में गन्ने की बहुतायत है और गन्ना मिलें एथनॉल बना कर किसानों का गन्ना खरीद पा रही हैं। अगर एथनॉल अमेरिका से आने लगा तो गन्ना मिलें और गन्ना किसान- दोनों संकट में फंस जाएंगे। अभी डेयरी के बारे में कुछ स्पष्ट नहीं है। लेकिन अगर उस पर शुल्क और पाबंदी हटा दी जाती है तो भारत के पशुपालकों के लिए भारी संकट खड़ा हो जाएगा।

संसद में वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल का बयान स्थिति को साफ करने की बजाय और धुंधला करता है। उनका कहना है कि इस समझौते में किसानों और डेयरी के हितों की रक्षा की गई है। साथ ही यह भी कहते हैं कि अभी समझौते के प्रावधानों पर चर्चा चल रही है। सवाल यह है कि अगर समझौता फाइनल नहीं हुआ है तो किसान के हित कैसे सुरक्षित मान लिए जाएं? अगर सुरक्षित हो चुके हैं तो सरकार उसे सार्वजनिक क्यों नहीं कर देती? यूं भी अगर ऐसा है तो भारत सरकार अमेरिका के राष्ट्रपति और कृषि मंत्री के बयान का खंडन क्यों नहीं करती?

बाहर से आए इस संकट को भीतरी बेरुखी से जोड़ने पर पूरी तस्वीर सामने आती है। नए बजट में वित्त मंत्री ने नाम के वास्ते भी किसान का नाम लेना जरूरी नहीं समझा। खानापूर्ति के लिए जो योजनाओं की घोषणा की जाती थी, वे भी नहीं कीं। कृषि और उससे जुड़ी सभी मदों पर खर्चे का अनुपात 2019 के बाद से लगातार घटता रहा है, इस साल 3.38 फीसद से घटाकर 3.04 फ़ीसद कर दिया गया। यही नहीं, पिछले साल जिन छह विशेष मिशन की घोषणा की गई थी, उनके लिए बजट में एक पैसा भी नहीं दिया गया। ऊपर ने यूरिया की सब्सिडी काटने की तैयारी कर ली गई है। लेकिन खेती-किसानी के दीर्घकालिक संकट से निपटने के लिए कोई योजना नहीं बनाई गई। कुल मिलाकर सरकार ने किसान को भगवान भरोसे छोड़ने की ठान ली है। अब देखना है कि किसान और किसान संगठन इस चुनौती का प्रतिकार कैसे करते हैं। ■

निष्पक्षता पर सवाल, समान अवसर नहीं

भारत 'विश्वगुरु' बनना चाहता है, तो स्वतंत्र, निष्पक्ष और व्यापक तौर पर स्वीकार्य चुनावों पर नए सिरे से क्यों नहीं सोचता चुनाव आयोग

नूर मोहम्मद

आजादी के बाद से भारत की चुनावी प्रक्रिया खासी लचीली और मजबूत संस्थागत ढांचे में विकसित हुई है। लेकिन हालिया मीडिया कवरेज, संसदीय बहसों और सिविल सोसायटी के दखल के साथ-साथ न्यायिक कार्यवाही में भी दिखने वाली घटनाओं और सार्वजनिक चर्चाओं ने इसकी निष्पक्षता पर नए सवाल उठाए हैं। चिंता बढ़ती दिखी है कि क्या मुकाबले का मैदान सभी राजनीतिक दलों के लिए वास्तव में समान रूप से समतल है। चुनावों को विश्वसनीय, समावेशी और लोगों का भरोसा जीतने वाला बनाए रखने के लिए इन चिंताओं पर गंभीरता से सोचना होगा।

चुनावों में समान अवसर का अर्थ ही है राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों को वोटरों से संवाद, संसाधन जुटाने और किसी को अनुचित लाभ पहुंचाए बिना चुनावी समर्थन मांगने का बराबर मौका। यह सिद्धांत महज एक उम्मीद नहीं; लोकतांत्रिक वैधता के लिए अत्यंत जरूरी भी है। जब चुनावी नतीजे विचारों की लड़ाई के बजाय सत्ता, संसाधन या संस्थागत पहुंच में असमानताओं से तय होने लगें, लोकतंत्र का प्रतिनिधि चरित्र कमजोर हो जाता है।

हालिया राजनीतिक चर्चाओं के सबसे अहम मुद्दों में से एक राजनीतिक फंडिंग की असमानता है। आंकड़े गवाह हैं कि सत्तारूढ़ और विपक्षी दलों के वित्तीय संसाधनों में खासा अंतर है। चुनावी बॉन्ड आए थे पारदर्शिता बढ़ाने, लेकिन हुआ उलटा और हर तरफ इसकी आलोचना राजनीतिक फंडिंग में अपारदर्शिता के लिए हुई। ऐसे आरोपों ने लोगों का भरोसा तोड़ा कि सरकारी एजेंसियों की कार्रवाइयों के बाद सत्ताधारी दल को राजनीतिक चंदा मिला। सुप्रीम कोर्ट ने इलेक्टोरल बॉन्ड रद्द कर दिया, लेकिन राजनीतिक दलों द्वारा इकट्ठा भारी फंड अब भी उनके पास है और इस तरह बराबरी के अवसर वाली बात को मुंह चिढ़ाता रहेगा। मौजूदा इलेक्टोरल ट्रस्ट का पैटर्न भी ऐसा है कि फंड प्रबंधन अब भी कॉर्पोरेट घरानों के हाथ में है, और इस तरह सत्तारूढ़ सरकार की संदिग्ध हरकतों के दायरे में आ सकता है।

समस्या का समाधान इन ट्रस्टों का प्रबंधन एक ऐसे बड़े संगठन में तब्दील कर निकाला जा सकता था, जो कमीशन द्वारा बताए गए और सभी दलों द्वारा माने गए मानदंडों के आधार पर राजनीतिक दलों की फंडिंग का काम करता।

राजनीतिक दलों की कॉर्पोरेट फंडिंग तक असमान पहुंच के अलावा, सत्तारूढ़ सरकार द्वारा चुनावों के ठीक पहले सार्वजनिक कोष और कल्याणकारी योजनाओं के इस्तेमाल से भी चुनावी निष्पक्षता पर सवाल उठे हैं। हाल के वर्षों में, कई राज्यों ने चुनावों से ठीक पहले डायरेक्ट कैश ट्रांसफर या लाभकारी स्कीमों की घोषणा की है। शिकायतें हैं कि मॉडल कोड ऑफ कंडक्ट लागू होने के बावजूद, चुनाव कार्यक्रम की घोषणा के बाद भी ट्रांसफर जारी रहे। यह फंड ट्रांसफर सार्वजनिक संसाधनों का इस्तेमाल कर मतदाता को रिश्वत देने जैसा है। विडंबना है कि यह सब भारत के चुनाव आयोग को संविधान के अनुच्छेद 324 के तहत चुनावों में भ्रष्टाचार रोकने के लिए मिली व्यापक संवैधानिक और कानूनी शक्तियों के बावजूद है।

ये मुद्दे एक व्यापक राजनीतिक आर्थिकी कानून की जरूरत बताते हैं। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत मौजूदा प्रावधान जवाबदेही लागू करने को पर्याप्त नहीं हैं। दरकार एक ऐसे आधुनिक कानूनी ढांचे की है, जहां राजनीतिक चंदे में 'पूरी पारदर्शिता' की अनिवार्यता तो हो ही, व्यक्तिगत उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों, दोनों द्वारा खर्च की सीमाएं भी सख्ती से लागू हों। ऐसा कानून बेहतर अंतरराष्ट्रीय मान्यताओं को शामिल करते हुए और भारत की जमीनी राजनीतिक हकीकतों के हिसाब से बनाया जा सकता है। फिलहाल, खर्च की सीमा सिर्फ उम्मीदवारों पर लागू होती है (और इसे लागू करना लगभग नामुमकिन है) जबकि राजनीतिक दलों के लिए कोई सीमा तय नहीं है और वे जितना चाहें खर्च कर सकते हैं।

फोटो: गेटी इमेजेज

नदारद ठाणे में म्युनिसिपल कॉरपोरेशन चुनाव में मतदाता सूची में अपने नाम खोजते लोग

*

चुनावी अभियान का डिजिटल कायांतरण अवसर भी देता है और जोखिम भी। ज्यादा पैसे वाले राजनीतिक दलों के पास अब अत्याधुनिक संवेदनशील आईटी सेल होते हैं जो उनकी पहुंच बढ़ाते हैं। सरोगेट एडवरटाइजिंग, लक्षित अपारदर्शी मैसेजिंग और बिना सही सुरक्षा उपायों के वोटर्स की माइक्रो-टारगेटिंग वाली चिंताएं कायम हैं।

छेड़छाड़ कर तैयार ऑडियो-विज़ुअल सामग्री और डीपफेक जैसी एआई जनित राजनीतिक सामग्री चुनावी जोखिम का नया पहलू है। 2024 के आम चुनावों के दौरान एआई जनित वीडियो और तस्वीरों वाली रिपोर्ट्स ने गलत जानकारी, वोटर्स को धोखा देने और सोच-समझकर सहमति देने का अधिकार खत्म करने को लेकर गंभीर सवाल उठाए। इन बदलावों के मद्देनजर डिजिटल रजनीतिक प्रचार के लिए स्पष्ट नियामक, ऑनलाइन राजनीतिक खर्च में जरूरी पारदर्शिता और भ्रम फैलाने वाली सामग्री को पहचानने, उसका मुकाबला करने के लिए संस्थागत तरीकों की जरूरत है। चुनाव अधिकारियों, टेक्नोलॉजी प्लेटफॉर्म और राजनीतिक दलों को डिजिटल प्रचार में ईमानदारी बनाए रखने की जिम्मेदारी बांटनी चाहिए।

> समान अवसर के लिए 'चुनावी अंपायर' न सिर्फ स्वतंत्र होना बल्कि स्वतंत्र दिखना भी चाहिए। भारत का चुनाव आयोग मानदंड लागू करने में असंगत रहा है, खासकर सत्ताधारी पार्टी के आचरण के संबंध में- उसके स्टार प्रचारकों द्वारा नफरत भरे भाषण अक्सर बिना जांच के रह जाते हैं

मौजूदा बहसों में भारत के चुनाव आयोग की कथित निष्पक्षता संभवतः सर्वाधिक चर्चित मुद्दा है। निष्पक्ष माहौल बनाए रखने के लिए, चुनावी अंपायर का न सिर्फ स्वतंत्र होना जरूरी है, बल्कि उसे स्वतंत्र 'दिखना' भी चाहिए; चुनावी प्रबंधन निकाय की नियुक्ति प्रक्रिया पारदर्शी होनी चाहिए- कुछ देशों में तो ऐसी नियुक्तियों के लिए संसदीय मंजूरी भी जरूरी होती है। हाल की राजनीतिक चर्चाओं में चुनाव आयोग द्वारा, खासकर सत्ताधारी पार्टी के व्यवहार के मामले में नियम लागू करने में असंगत या नरम रुख अपनाने के आरोप लगे, कि सत्तारूढ़ दल के स्टार प्रचारकों के नफरती भाषणों पर प्रायः कोई कार्रवाई नहीं होती। पक्षपात की आशंका भी संस्था की विश्वसनीयता को नुकसान पहुंचाती है।

मतदाता सूची से जुड़ी चिंताओं पर खास तवज्जो की जरूरत है। अगर राजनीतिक दल और नागरिक सतर्क नहीं रहते हैं, तो मतदाता सूची में हेरफेर या बड़ी गलतियां नतीजों पर निर्णायक असर डाल सकती हैं। हाल ही में खासकर बिहार और फिर दूसरे राज्यों में भी हुए स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन (एसआईआर) की इसलिए आलोचना हुई, क्योंकि यह लोगों को बाहर करने वाले थे। लंबे समय से चली आ रही मतदाता पंजीकरण व्यवस्था को ऐसी प्रक्रियाओं से बदल दिया गया, जिसके कारण मतदाता पर नागरिकता का दस्तावेजी सबूत पेश करने का बोझ पड़ गया, जबकि भारत में कोई सर्वस्वीकार्य नागरिकता दस्तावेज नहीं है। मतदाता सूची में अपात्र नामों की पहचान सात दशकों से ज्यादा समय तक बिना किसी बड़ी रुकावट के जारी रही, जो दिखाता है कि कहीं ज्यादा संतुलित तरीके उपलब्ध हैं।

मतदाता पंजीकरण के अलावा, चुनाव क्षेत्रों का बंटवारा और पोलिंग स्टेशनों की जगह तय करना भी चुनाव पूर्व की ऐसी गतिविधियां हैं जहां हेरफेर संभव है। राजनीतिक दलों से सलाह-मशविरा करने की भी एक प्रक्रिया है, लेकिन कैडर के अभाव और कम संसाधन वाले दल इसका फायदा नहीं उठा पाते। नतीजतन, संसाधन सम्पन्न दलों के पक्ष में हेरफेर की संभावना बनी रहती है। परिसीमन आयोग में एसोसिएट सदस्य संसाधनों की कमी के कारण प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं।

पारदर्शिता की चिंताएं ईवीएम और वीवीपैट मिलान तक भी फैली हैं। वीवीपैट लाने का मकसद मतदाता का भरोसा बढ़ाना था, लेकिन हर निर्वाचन क्षेत्र में महज पांच पोलिंग स्टेशनों से ही पर्चियों के मिलान की मौजूदा प्रथा ने वह मकसद ही धराशाई कर दिया। ईवीएम और वीवीपैट सॉफ्टवेयर की सार्वजनिक जांच की मांग उठाई गई है। इस मांग के साथ ही वीवीपैट पर्चियों की गिनती (मांग होने पर ही सही) पर गंभीरता से विचार करना होगा।

यह भी जरूरी है कि चुनाव से काफी पहले ऐसी मतदाता सूची उपलब्ध हों जिन्हें मशीन के जरिये पढ़ा जा सके। ऐसी पारदर्शिता से राजनीतिक दलों और सिविल सोसाइटी द्वारा स्वतंत्र सत्यापन हो पाता है, प्रशासनिक त्रुटियों की गुंजाइश कम होती हैं और चुनावी प्रक्रिया की ईमानदारी पर भरोसा मजबूत होता है।

अगर भारत विश्व गुरु बनना चाहता है, तो स्वतंत्र, निष्पक्ष और बड़े पैमाने पर स्वीकार्य चुनावों के लक्ष्य पर नए सिरे से और गंभीरता से ध्यान देना होगा। चुनाव आयोग, संसदीय समितियों, लॉ कमीशन और एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स जैसे सिविल सोसाइटी संगठनों की तरफ से आए कई सुधारों के प्रस्ताव अब भी लागू नहीं हुए हैं। समय आ गया है कि इन प्रस्तावों की जांच करके चुनाव सुधार हों, सभी स्टेकहोल्डर्स के लिए समान अवसर बनाए जाएं और किसी भी उल्लंघन के लिए सीधी जवाबदेही तय की जाए। ■

संडे नवजीवन
रविवार, 08 फरवरी, 2026 I www.navjivanindia.com

दुआ करें, टकराव में जीत कूटनीति की हो

कोई भी डील अधूरी और विवादित हो सकती है, लेकिन अधूरी कूटनीति पूरी तबाही से बेहतर है

अशोक स्वैन

अमेरिका और ईरान एक बार फिर खतरनाक मोड़ पर हैं। युद्धक विमान और एयरक्राफ्ट कैरियर समेत सैनिकों को तैनात किया जा रहा है और खतरनाक धमकियां दी जा रही हैं। इस तनाव भरे माहौल में एक भी गलत कदम या गलतफहमी ऐसा संकट पैदा कर सकती है जिसे संभालना बहुत मुश्किल होगा।

हाल ही में जिस तरह अरब सागर में अमेरिकी सेना ने ईरानी ड्रोन को मार गिराया, वह संकेत है कि छोटी-मोटी घटनाएं भी बड़े टकराव में बदल सकती हैं। होर्मुज जलडमरूमध्य में ईरानी सेना द्वारा अमेरिकी झंडा लगे एक कमर्शियल जहाज को रोकने की कोशिश की नई रिपोर्ट आई है। ये कोई सुदूर चेतावनी नहीं, वास्तव में आकार ले रहे टकराव के संकेत हैं।

इस बढ़ते तनाव के बावजूद, हालात को कूटनीतिक तरीके से संभालने की थोड़ी-बहुत गुंजाइश अब भी है। परमाणु समझौते को वापस पटरी पर लाने की कोशिश हो रही है और वॉशिंगटन का कहना है कि बेशक सेनाएं तनाव बढ़ने का संकेत दे रही हैं, लेकिन बातचीत अभी चल रही है। मौका नाजुक है, लेकिन कूटनीतिक पहल ही अकेला तरीका है जिससे एक क्षेत्रीय युद्ध के वैश्विक संकट में बदलने को रोका जा सकता है। क्योंकि अगर आशंकाएं सच साबित हुईं तो इंसानी और आर्थिक नुकसान हद से ज्यादा होंगे।

सबसे खतरनाक होगा तेहरान में सत्ता बदलने के लिए कोई भी अमेरिकी सैन्य अभियान। इतिहास बताता है कि ऐसे प्रोजेक्ट कभी भी स्थिरता नहीं लाते। इराक से लेकर लीबिया तक, कहीं भी सरकार के गिरने से कोई नई स्थिर शासन प्रणाली नहीं बनी; बल्कि एक खालीपन ही पैदा हुआ।

ईरान कोई छोटा या कमजोर देश नहीं जिसे जैसे चाहें बदल दें। यह नौ करोड़ लोगों का देश है, जिसके पास मजबूत संस्थाएं, इतिहास की गहरी समझ और एक ताकतवर सुरक्षा प्रणाली है। अगर कोई बाहरी हमला सत्ताधारी ढांचे को गिराने की कोशिश करता है, तो इसकी संभावना अधिक है कि लोग समर्पण या सुधार नहीं करें, बल्कि बाहरी दुश्मन के खिलाफ एकजुट हो जाएं। इससे कट्टरपंथी सत्ता में आएंगे, सुरक्षा बल नियंत्रण और कड़ा कर देंगे और वर्तमान सत्ता को नापसंद करने वाले लोग भी बाहरी हमले के समय देश के साथ खड़े हो जाएंगे।

हाल के अनुभव उनके लिए भी चेतावनी होने चाहिए जो अब भी मानते हैं कि हवाई हमले राजनीतिक बदलाव ला सकते हैं। 2025 में, इसराइल और अमेरिका ने ईरान में बड़े हमले किए, जिसमें परमाणु और सैन्य इंफ्रास्ट्रक्चर को निशाना बनाया गया। इनसे नुकसान तो हुआ, लेकिन सरकार गिरी नहीं, उसका सुरक्षा तंत्र टूटा नहीं। उसका नेतृत्व अपनी जगह बना रहा। सरकार ने खुद को हालात के हिसाब से ढाला और फिर से नियंत्रण हासिल कर लिया। हाल के हफ्तों में, ईरानी अधिकारियों ने भी सख्त कार्रवाई करके विरोध प्रदर्शनों की एक और लहर को दबा दिया।

ईरान को अमेरिका के बड़े हवाई हमले को रोकने में मुश्किल हो सकती है, खासकर संवेदनशील ठिकानों पर। यह बात सैन्य नजरिये से सच होगी, लेकिन सच्चाई यह है कि ईरान को पारंपरिक लड़ाई जीतने की जरूरत ही नहीं। भले वह हवाई हमले न रोक पाए, वह पूरे इलाके में ऐसे तरीकों से जवाबी कार्रवाई कर सकता है जिससे वॉशिंगटन और उसके साथियों को भारी नुकसान हो। ईरान ने बैलिस्टिक मिसाइलों, क्रूज मिसाइलों और लड़ाकू और आत्मघाती ड्रोन पर खासा पैसा झोंका है। उसके पास ऐसे सैन्य बेस और कमर्शियल इंफ्रास्ट्रक्चर पर हमला करने की भी क्षमता है जो ईरान की सीमाओं से बहुत दूर हों। इसलिए, एक सीमित हमला भी एक बड़े संघर्ष को जन्म दे सकता है, भले शुरुआती सोच तनाव काबू करने की हो।

ईरान का पतन सिर्फ ईरान तक सीमित नहीं रहेगा; यह पूरे पश्चिम एशिया में फैल जाएगा। ईरान दुश्मनी, हथियारबंद समूहों, व्यापार मार्गों और एनर्जी नेटवर्क के जरिये इस क्षेत्र से गहराई से जुड़ा है। लगभग तय है कि अगर अमेरिका हमला करता है तो ईरान अपने तरीके से जवाबी कार्रवाई करेगाः उसने मिसाइलों, ड्रोन, प्रॉक्सी सेनाओं और रणनीतिक चोक पॉइंट्स पर दबाव डालकर जवाब देने के तरीके बना रखे हैं।

फारसी की खाड़ी वह पहली जगह होगी जहां इसके वैश्विक नतीजे दिखेंगे। होर्मुज जलडमरूमध्य दुनिया के सबसे जरूरी जलमार्गों में है क्योंकि दुनिया का 20 फीसद तेल और गैस इसी से गुजरता है। बड़ी रुकावट पैदा करने के लिए ईरान को इसे पूरी तरह बंद करने की भी जरूरत नहीं। जहाजों को थोड़ा-बहुत परेशान करने, मिसाइल की धमकी से भी दहशत फैल सकती है। अगर बाजारों को लगेगा कि शिपिंग असुरक्षित है, तो तेल की कीमतें चंद दिनों में ही बढ़ जाएंगी। पहले से ही आर्थिक दबाव झेल रहे यूरोप को इसकी तपिश फौरन महसूस होगी। गरीब देशों को भी इसका असर झेलना होगा।

फिर युद्ध का मैदान और व्यापक हो जाएगा। इराक इसके शुरुआती केन्द्रों में होगा। वहां अमेरिकी सैनिकों और कूटनीतिक सुविधाओं पर ईरान समर्थित मिलिशिया हमला कर सकते हैं, जिससे इराक फिर से अस्थिरता और हिंसा की चपेट में आ जाएगा। लेबनान भी इसमें घसीटा जा सकता है। हिजबुल्लाह पर दबाव होगा कि वह ईरान पर हुए हमले का जवाब दे। सीरिया एक और खतरनाक इलाका होगा। युद्ध हमेशा जानबूझकर बनाई गई योजनाओं से नहीं फैलते; वे अक्सर गलत अनुमान, घबराहट और अचानक जवाबी कार्रवाई से फैलते हैं।

ईरान की अस्थिरता का सीधा असर कुर्द मुद्दे पर भी पड़ेगा, जिससे अमेरिका के एक अहम सहयोगी तुर्की के लिए नई सुरक्षा और राजनीतिक दिक्कतें पैदा होंगी। अंकारा को लंबे समय से यह डर रहा है कि ईरान के अंदर कमजोर होती सत्ता कुर्द आतंकी समूहों को फिर से संगठित होने, आकार बढ़ाने और ईरान-तुर्की सीमा पर ज्यादा खुराफात करने का मौका दे सकती है।

इसका मानवीय असर बहुत बड़ा हो सकता है। अगर ईरान अंदरूनी तौर पर बंट जाता है या गृहयुद्ध में फंस

फोटो: गेटी इमेजेज

एकजुटता एडमंटन के ह्वाइट एवेन्यू में ईरान के प्रदर्शनकारियों के साथ एकजुटता दिखाते फिलिस्तीन के स्थानीय लोग

> सबसे खतरनाक होगा तेहरान में सत्ता बदलने के लिए कोई भी अमेरिकी सैन्य अभियान। इराक से लेकर लीबिया तक, कहीं भी सरकार के गिरने से कोई नई स्थिर शासन प्रणाली नहीं बनी बल्कि एक खालीपन ही पैदा हुआ

जाता है, तो लाखों लोग बेघर हो सकते हैं। शरणार्थी तुर्की, इराक, पाकिस्तान और काकेशस इलाके की तरफ जा सकते हैं। ये सब पहले से ही आर्थिक और सुरक्षा दबावों का सामना कर रहे हैं और बड़े पैमाने पर होने वाले पलायन को संभालने में उन्हें मुश्किल होगी। यूरोप भी अछूता नहीं रहेगा। प्रवासन राजनीति ने पहले ही यूरोप को बांट रखा है, और पलायन की एक नई लहर, ऊर्जा संकट के साथ मिलकर, पश्चिम एशिया से कहीं ज्यादा अस्थिरता पैदा करने वाली हो सकती है।

सबसे खतरनाक दीर्घकालिक नतीजा न्यूक्लियर होगा। सत्ता बदलने के मकसद से की गई जंग से ईरान के नेताओं को शायद यह यकीन हो जाएगा कि अमेरिका किसी भी कीमत पर उन्हें खत्म करने पर तुला है। ऐसी स्थिति में, न्यूक्लियर हथियार हासिल करने की प्रेरणा और बढ़ जाएगी। इस तरह ईरान को न्यूक्लियर हथियार हासिल करने से रोकने के लिए किया गया सैन्य हमला उलटा ईरान को उन्हें और तेजी से हासिल करने को मजबूर करेगा।

इस क्षेत्र में कुछ लोगों का मानना है कि एक इस्लामी नाटो बनाकर ईरान को काबू किया जा सकता है। यह तर्कसंगत लगता है, लेकिन ऐसा गठबंधन केवल बातों तक सीमित है, इसका कोई ठोस ढांचा नहीं। सुन्नी-बहुसंख्यक देशों के हित आपस में टकराते हैं, उनकी प्राथमिकताएं अलग हैं और उनके बीच अनसुलझी प्रतिद्वंद्विताएं हैं। कुछ देश ईरान को मुख्य खतरा मानते हैं, जबकि अन्य आंतरिक अस्थिरता, आर्थिक अस्तित्व या अन्य भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। पाकिस्तान इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह एक परमाणु शक्ति है, लेकिन उसकी सुरक्षा का मुख्य केन्द्र भारत है। खाड़ी के राजतंत्र बेशक अमेरिकी संरक्षण चाहते हों लेकिन यदि वे क्षेत्र की नाजुक स्थिरता को भंग करने वाले किसी भी युद्ध में सीधे शिरकत करते हैं तो उन्हें जनता के कड़े विरोध का सामना करना पड़ सकता है।

इसीलिए सैन्य हस्तक्षेप से ईरान को रोकना भ्रम है। इससे यह झूठा भरोसा पैदा होता है कि तनाव को संभाला जा सकता है। लेकिन एक बार पहला हमला हो जाने के बाद, चीजें हाथ से बाहर हो जाती हैं। हर तरफ ज्यादा कड़ा जवाब देने का दबाव होता है। कूटनीति ही अकेला जरिया है जो निरीक्षण और निगरानी से ईरान के न्यूक्लियर प्रोग्राम पर भरोसेमंद, दीर्घकालिक नियंत्रण लगा सकता है। अभी चल रही कूटनीतिक बातचीत सिर्फ बातचीत का एक दौर नहीं; यह बिना सीमाओं वाले युद्ध की ओर बढ़ने से रोकने का आखिरी सार्थक मौका हो सकता है। कोई भी समझौता अधूरा और विवादित हो सकता है, लेकिन अधूरी कूटनीति पूरी तबाही से कहीं बेहतर है। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं।

पड़ताल कथित एनकाउंटर के बाद जांच-पड़ताल करती पुलिस

क्या हम एक पुलिस स्टेट में रह रहे हैं?

लोकतंत्र में अफसर कानून के शासन का जानबूझकर उल्लंघन करते हैं तो क्या होता है

आकार पटेल

एक लोकतांत्रिक समाज के तौर पर, यह उम्मीद की जाती है कि भारत के अधिकारी कानून के शासन का पालन करेंगे। इसमें यह भी शामिल है कि शासन मनमाना नहीं होगा, खासकर तब, जब बात क्रिमिनल लॉ की हो। यह बात इसलिए जरूरी है क्योंकि क्रिमिनल लॉ से किसी की जिंदगी बर्बाद हो सकती है। ऐसा ही हाल ही में एक जज ने कॉलेज छात्रों के एक ऐसे समूह को याद दिलाया था, जिन्होंने एक विरोध प्रदर्शन में हिस्सा लिया था।

वैसे तो यह अलग मुद्दा है कि आखिर विरोध प्रदर्शन में हिस्सा लेना अपराध कैसे हो गया, लेकिन ऐसा हो रहा है। राज्य द्वारा क्रिमिनल लॉ का यूं ही इस्तेमाल और फिर जिस पर यह लगाया गया है, उस व्यक्ति का लंबे समय तक लड़ने का संघर्ष, हम भारतीयों ने अब इसे ही सामान्य मान लिया है। हमारे लिए खास बात यह हैः यह स्वाभाविक नहीं हो सकता कि लोकतंत्र की जननी माने जाने वाले देश में, आम नागरिक, पुलिस, अदालत और आम तौर पर सरकार से डरते हैं। इसमें कुछ भी नया नहीं है और सिनेमा में तो जाने कब से 'पुलिस का चक्कर' शब्द का इस्तेमाल हो रहा है।

मैं जिस बारे में बात करना चाहता हूं, वह कुछ अलग है। यह अब अपनी जड़े जमा चुका है और भारत के लोकतंत्र का हिस्सा बन गया है। इस हफ्ते की दो हेडलाइन से यह साफ हो जाएगा कि मेरा क्या मतलब है। पहली हेडलाइन हैः 'इलाहाबाद हाईकोर्ट ने उत्तर प्रदेश पुलिस की आरोपी व्यक्तियों को पैरों में गोली मारने के तरीके प्रैक्टिस की आलोचना की'। इस खबर के सबहेड में लिखा हैः 'बेंच ने कहा - ऐसा व्यवहार पूरी तरह से गलत है, क्योंकि सजा देने का अधिकार सिर्फ अदालतों के पास है।' दूसरी हेडलाइन है 'उत्तराखंड के धर्मांतरण कानून के तहत दर्ज मामले अदालत में ध्वस्त : 7 साल, 5 पूरे ट्रायल, सभी 5 में बरी'।

पहले मामले में, उत्तर प्रदेश सरकार ने पिछले साल जुलाई में आंकड़े जारी किए थे। 2017 से अब तक पुलिस मुठभेड़ में 9,467 लोगों को पैर में गोली मारी गई थी। इसका मतलब है कि प्रदेश में पिछले नौ सालों से रोजाना लगभग तीन लोगों को पुलिस ने पैर में गोली मारी है।

अब कोर्ट ने ये टिप्पणी की हैः सीनियर अधिकारियों को खुश करने के लिए या बिना किसी कानूनी प्रक्रिया के लोगों को सजा देने के पैरों में लिए गोली मारी जा रही है। कोर्ट ने कहा कि यह न्यायपालिका के काम में दखल है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। बयान रिकॉर्ड करने और जांच के बारे में, कोर्ट ने कहा कि पुलिस सुप्रीम कोर्ट की गाइडलाइंस का पालन नहीं कर रही है। कोर्ट इस बात से चिंतित था कि पुलिस अधिकारी जजों, खासकर चीफ ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट पर खास ऑर्डर पास करने के लिए दबाव डाल रहे थे।

जज ने कहा कि कोर्ट उत्तर प्रदेश को पुलिस स्टेट बनने की इजाजत नहीं दे सकता।

एक ऐसा राज्य जो हिरासत में लोगों को मारता है, जो हिरासत में लोगों को अपाहिज बनाता है, जो बिना सही कानूनी प्रक्रिया के और सुप्रीम कोर्ट सहित पूरी न्याय व्यवस्था को नजरअंदाज करके लोगों की निजी संपत्ति को नष्ट करता है, वह जाहिर तौर पर पहले से ही एक पुलिस स्टेट नहीं है!

दूसरी रिपोर्ट की हेडलाइन थीः 'उत्तराखंड के धर्मांतरण कानून के तहत मामले कोर्ट ध्वस्तः 7 साल, 5 पूरे ट्रायल, सभी 5 में बरी'। यह जिक्र उत्तराखंड धर्म स्वतंत्रता अधिनियम 2018 का है, जो 'लव जिहाद' की साजिश की थ्योरी फैलने के बाद भाजपा द्वारा पेश और लागू किए गए कई राज्यों के कानूनों में सबसे पहले बनाया गया था।

यह मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच शादी को तब अपराध मानता है, जब दोनों में से कोई एक पार्टनर धर्म बदलता है, लेकिन कानून कहता है कि 'अगर कोई व्यक्ति अपने पैतृक धर्म में वापस आता है' तो इसे धर्म परिवर्तन नहीं माना जाएगा, बिना यह बताए कि 'पैतृक धर्म' का क्या मतलब है। इसका मतलब है कि अगर कोई गैर हिन्दू अपना धर्म छोड़कर हिन्दू धर्म अपनाता है तो उसे धर्म परिवर्तन नहीं माना जाएगा।

लव जिहाद की अगर शिकायत दर्ज हो गई तो, फिर जिला मजिस्ट्रेट पुलिस के जरिये 'उस प्रस्तावित धर्म परिवर्तन के असली इरादे, मकसद और कारण' के बारे में जांच करेंगे। जो लोग सरकार को 'निर्धारित प्रोफार्मा' में आवेदन किए बिना और पुलिस जांच के बाद सरकार की सहमति के बिना अपना धर्म बदलते हैं, उन्हें एक साल की जेल हो सकती है।

यह कानून सात साल से लागू है। इस दौरान, पांच मामलों में ट्रायल पूरा हुआ, और उन सभी में आरोपियों को बरी कर दिया गया। सात और मामले ट्रायल के दौरान खारिज कर दिए गए। रिपोर्ट में कहा गया है कि 'कोर्ट रिकॉर्ड से यह साफ है कि सबूतों के मानक आमतौर पर पूरे नहीं किए गए, आपसी सहमति से बने रिश्तों को अपराधी बनाया गया, और जांच और मुकदमे में प्रक्रियागत खामियां हैं।'

जिस अखबार ने यह रिपोर्ट छापी, उसने इसे एक खास ऐंगल देते हुए लिखा, 'उत्तराखंड में, न्यायपालिका ने नागरिकों को सरकार की मनमानी से बचाया'। यह बेतुका संपादकीय है, क्योंकि नागरिकों को सजा तो दी ही गई। जैसा कि आजकल के युवा कहते हैं, यहां 'बचाया' शब्द बहुत ज्यादा काम कर रहा है।

> जुलाई 2025 में यूपी सरकार ने जो आंकड़े जारी किए, उनसे पता चलता है कि 2017 से यूपी पुलिस ने 9,467 लोगों के पैरों में गोली मारी है, यानी नौ सालों तक रोज तीन लोगों को गोली मारी गई

हमारे दौर में हमारे आस-पास जो हो रहा है, उससे हम क्या नतीजा निकाल सकते हैं? दो बातें। पहली यह कि पूरे भारत में अधिकारी जानबूझकर कानून तोड़ रहे हैं ताकि वे भाजपा सरकारों की मर्जी के हिसाब से चल सकें। वे ऐसा पूरे भरोसे के साथ कर रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि उनकी कोई जवाबदेही नहीं होगी और सच तो यह है कि जैसा कि यूपी कोर्ट ने कहा है, उन्हें ऐसा करने के लिए इनाम भी मिल सकता है।

दूसरी बात हमें वहीं ले जाती है जहां से हमने शुरुआत की थी और हम पूछें कि जब एक लोकतांत्रिक समाज के अधिकारी जानबूझकर कानून के शासन, खासकर आपराधिक कानून का उल्लंघन करते हैं, तो क्या होता है? इसके छोटे और लंबे समय के नतीजे होते हैं और दोनों ही टाले नहीं जा सकते।

तुरत-फुरत सामने आने वाले नतीजे वे हैं जिनके बारे में हम पढ़ते हैंः सरकार की हरकतों से बर्बाद हुई ज़िंदगी। लेकिन लंबे अर्से तक रह जाने वाले नतीजे वे हैं जो पूरे देश और समाज पर असर डालते हैं। जो देश खुद से यह झूठ बोलता है कि वह कानून के राज वाला लोकतंत्र है, वह उस जगह नहीं पहुँचेगा जहां कानून का राज समाजों को ले जाना चाहता है। ■

‘फॉरवर्ड’ करना क्या इतना ही ज़रूरी है?

प्रदूषण पर हाय-तौबा मचाने वालों, क्या आपने गौर किया कि आप इंटरनेट इस्तेमाल से कितना प्रदूषण फैला रहे?

अभय शुक्ला

अगर आप मुझसे पूछें तो वाट्सएप मैसेजिंग अब हाथ से निकलती जा रही है। मैं सामाजिक तौर पर बड़ा निष्क्रिय सा इंसान हूं। कह सकते हैं कि मेरा सामाजिक हुनर उस भालू जैसा ही है जो चार माह की नींद से अभी-अभी जागा हो। इसके बाद भी सुबह जागने पर मैं अपने फोन पर रोजाना तकरीबन 20-25 नए मैसेज पाता हूं। दिन बीतते-बीतते करीब 30 और मैसेज टपक जाते हैं। इनमें से सिर्फ 5 ही कुछ काम के होते हैं, बाकी सब बकवास- आम धार्मिक शुभकामनाएं, अच्छी जिंदगी जीने के तरीके पर उपदेश, अनजाने संतों के कोट, हर तरह की फेक न्यूज, और फिर आरआईपी लिखकर शोक जताना। इनमें से कुछ मुझे दिलचस्प लगते हैं। आपसे साझा करता हूं।

चलिए, आरआईपी की बात करते हैं। अगर किसी वाट्सएप ग्रुप में किसी सदस्य या उसके रिश्तेदार/दोस्त की मौत हो गई है, तो आरआईपी लिखने का क्या मतलब? क्या इससे प्रभावित परिवार को सांत्वना मिलती है? क्या यह ज्यादा सही नहीं कि मैसेज सीधे मृतक के परिवार को भेजा जाए? क्या मैसेज भेजने का मकसद अपनी चिंता का सार्वजनिक दिखावा करना है या सच्ची सहानुभूति या दुख दिखाना है? अगर बात दिखावे की है तो क्या ‘ट्रिब्यून’ या ‘टाइम्स ऑफ इंडिया’ में दो कॉलम का विज्ञापन देना बेहतर नहीं होगा?

फिर आते हैं औपचारिक शुभकामना संदेश पर- गणतंत्र दिवस की शुभकामनाएं! नए साल की शुभकामनाएं! महिला दिवस की शुभकामनाएं! गणेश चतुर्थी की शुभकामनाएं! यह अपने आप में एक सच्चाई है कि आजकल इन मौकों से जुड़ी किसी तरह की कोई खुशी नहीं होती, लेकिन फिलहाल इसे रहने देते हैं। इस तरह का मैसेज भेजने वाला कोई भी व्यक्ति इसे खुद नहीं लिखता। सारे मैसेज ‘फॉरवर्ड’ किए हुए होते हैं! ये बस ऐसे ही भेज दी गई शुभकामनाएं हैं, वह भी सेकंड हैंड! यही बात उनकी ईमानदारी या सच्चाई के बारे में बहुत कुछ कह देती है। और इनका फायदा ही क्या, जब साल के हर दिन कुछ-न-कुछ होता ही है और अगर ऐसे ही खुशी आनी है तो आपकी खुशी का प्याला तो पहले से ही भरा होता है!

यहां तक कि ‘खबर’ या सूचना वाली सामग्री भी आमतौर पर ‘फॉरवर्ड’ की हुई होती हैं, भेजने वाला शायद ही कभी उनकी सच्चाई की पड़ताल करता है या अपने विचार देता है, और यह भी पता नहीं चलता कि इसे क्यों भेजा गया। यह न सिर्फ बौद्धिक आलस की हद है, बल्कि यह मानकर चलने का उदाहरण कि आप ऐसे नासमझ हैं जिसे दुनिया में क्या हो रहा है, इसकी कोई जानकारी नहीं है और इसलिए हर आधे घंटे में आपको याद दिलाने की जरूरत है!

आमतौर पर मैं ऐसे सभी मैसेज बिना पढ़े डिलीट कर देता हूं। इसके अलावा, मैंने मानसिक तौर पर वाट्सएप समूहों पर कुछ भी लिखने-भेजने वाले ‘सीरियल अपराधियों’ की एक सूची तैयार कर रखी है और उनके मैसेज बिना देखे ही डिलीट कर देता हूं। खैर, आप पूछ सकते हैं कि मैं इस तरह इतना गुस्सा क्यों हो रहा हूं?

क्योंकि, प्यारे पाठकों, इस डिजिटल ‘डायरिया’ की एक पर्यावरणीय कीमत भी है। इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि वैश्विक प्रदूषण में एविएशन सेक्टर से ज्यादा योगदान इंटरनेट का है क्योंकि इंटरनेट की हिस्सेदारी 3.7 फीसद है जबकि एविएशन सेक्टर की 3 फीसद। दुनिया में हर दिन 150 अरब मैसेज भेजे जाते हैं (यह 300 अरब ईमेल के अलावा है!) हर वाट्सएप मैसेज (या ईमेल) से 0.3- 0.7 ग्राम सीओ-2 निकलती है; अटैच की गई तस्वीरें, वीडियो या ऑडियो इसे बढ़ाकर 17 ग्राम कर देते हैं। (यह आपके डिवाइस, सर्वर और

फोटो: गेटी इमेजेज

डिजिटल ‘डायरिया’ की पर्यावरणीय कीमत भी है। इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि वैश्विक प्रदूषण में एविएशन सेक्टर से ज्यादा योगदान इंटरनेट का है क्योंकि इंटरनेट की हिस्सेदारी 3.7 फीसद है जबकि एविएशन सेक्टर की 3 फीसद

डाटा रखने वाले सेंटर में खर्च होने वाली ऊर्जा जरूरतों के कारण होता है)। आप कह सकते हैं कि इसमें चिंता की क्या बात? लेकिन जरा हिसाब लगाइए, तब आपको मेरा गुस्सा समझ आएगा।

भारत में लगभग 80 करोड़ वाट्सएप यूजर हैं; अगर मान लें कि हर यूजर रोज सिर्फ 20 मैसेज भेजता है, तो रोजाना कुल 16 अरब मैसेज हुए। फर्ज करें कि हर मैसेज से 0.5 ग्राम सीओ2 निकली, तो रोजाना हर यूजर 10 ग्राम सीओ2 का कारण बन जाता है। तो 80 करोड़ वाट्सएप यूजर रोजाना 8,000 टन या सालाना 2,920,000 टन प्रदूषण पैदा कर रहे हैं।

जीमेल, नेटफ्लिक्स, यूट्यूब के इस्तेमाल से होने वाला प्रदूषण इसके अलावा है जो इससे कहीं ज्यादा है। प्रदूषण फैलाने वालों की लिस्ट में नया नाम एआई का है, जिसके डेटा सेंटर बहुत ज्यादा बिजली (और पानी) इस्तेमाल करते हैंः एआई चैटबॉट चैट जीटीपी का हर महीने का उत्सर्जन न्यूयॉर्क से लंदन की 260 उड़ानों के बराबर है! डिजिटल कार्बन फुटप्रिंट, जो अभी कुल उत्सर्जन का लगभग 4 फीसद है, के पांच सालों में दोगुना होने का अनुमान है।

खपत के दूसरे क्षेत्रों की तरह, हमें इंटरनेट के इस्तेमाल में भी ज्यादा जिम्मेदार बनना चाहिए और डिजिटल, या डेटा के उपयोग में भी मितव्ययी होना चाहिए। बेवजह मैसेजिंग बंद करना चाहिए। विशेषज्ञों की सलाह है कि हमें अपने पुराने और बेकार स्टोर किए गए मैसेज, फोटो और वीडियो की नियमित सफाई करनी चाहिए, बेवजह अटैचमेंट भेजने से बचना चाहिए, अनचाहे न्यूजलेटर से अनसब्सक्राइब करना चाहिए, पोस्ट भेजने से पहले उन्हें कंप्रेस करना चाहिए, और यूं ही कुछ भी देखते-भेजते रहने की नुकसानदायक आदत छोड़नी चाहिए। जरूरी नहीं है कि वाट्सएप पर आए हर मैसेज को सभी को फॉरवर्ड किया जाए, सिर्फ यह दिखाने के लिए कि आप कितने कनेक्टेड या जानकार हैं; इसके अलावा, हो सकता है कि इनमें से ज्यादातर लोगों को ये मैसेज पहले ही दूसरों से मिल चुके हों जो आपकी तरह ही सोचते हैं! हफ्ते में एक दिन बिना कोई मैसेज भेजे बिताने की कोशिश करें। हर छोटी कोशिश काम आती है और हमें नियमित रूप से डिजिटल शुद्धिकरण की जरूरत है। अगर ऐसा नहीं कर सकते, तो एक्यूआई के बारे में शिकायत करना बंद करेंः किसी देश को वही नेता और एक्यूआई मिलता है जिसका वह हकदार होता है। ■

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं।
यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है।

ताजपोशी की वर्षगांठ और और रंग में भंग

अवध के बेकस-बेबस नवाब वाजिद अली शाह ने तब भी अहल-ए-वतन से ‘खुश रहो’ ही कहा था

कृष्ण प्रताप सिंह

एक सौ सत्तर साल पहले की बात है। सन 1856 की फरवरी की बारहवीं तारीख की। अगले दिन सूबा-ए-अवध के नवाब वाजिद अली शाह की ताजपोशी की नवीं वर्षगांठ थी।

नवाबों के इकबाल वाले दिन होते, तो सूबे की राजधानी लखनऊ जश्न की तैयारियों में डूबी होती और उनकी निगरानी कर रहे वाजिद का दिल बल्लियों उछल रहा होता। लेकिन इसके उलट लखनऊ तो क्या, पूरे सूबे में मायूसी छाई हुई थी और अपने महल में झींकते हुए से वाजिद अपने आखिरी दिन गिनने को अभिशप्त थे।

उनकी बेबसी थी कि उन्हें अंदर-बाहर दोनों तरफ से हिलाए दे रही थी और वे यह देखकर कुढ़े जा रहे थे कि कभी उनके एक इशारे पर हुक्म बजाने दौड़ पड़ने वाले खिदमतगार अब उनकी सुनकर भी न सुनने, हुक्मउदूली करने और मजाक उड़ाने पर आमादा हैं। कुछ दिन पहले गुलनार नाम की एक मुंहलगी कनीज ने तो हद ही कर दी थी।

जिस ईस्ट इंडिया कंपनी की राजपाट हड़पने की बेदर्द नीति सारी खुराफात की जड़ थी, यह कनीज उसी द्वारा जारी किया गया चांदी का एक विक्टोरियन सिक्का गुलाबी जरीदार पोश से ढकी तश्तरी में लेकर उनके पास गई और बोली थी, ‘सुल्तान-ए-आलम! कंपनी का यह सिक्का सारे लखनऊ में जोर-शोर से चलने लगा है, जबकि आपके सिक्के आंखों से ओझल हो चले हैं। अब सिर्फ कैसरबाग है, जहां आपकी हुकूमत बाकी है और इसका भी कुछ ठिकाना नहीं कि कब तक बाकी रहेगी।’

तब उनका मन हुआ था कि उस गुस्ताख कनीज़ को भरपूर मजा चखाएं। लेकिन कैसे चखाते? कंपनी ने उनके कस-बल इतने ढीले कर दिए थे कि वे झुंझलाने के सिवाय कुछ कर सकते थे तो बस यही कि खुद की बेबसी से ख़फ़ा हो लें।

फिर भी उन्होंने तश्तरी में रखे सिक्के पर अपनी नजरें कुछ इस तरह गड़ा दी थीं, जैसे उसे अपनी निगाहों की गरमी से ही भस्म कर देंगे। फिर दाहिने हाथ से उठाकर अंगूठे और उंगलियों के बीच उसे इतनी जोर से रगड़ दिया था कि न अंगूठे की तरफ की उसकी विक्टोरिया की छाप सलामत रही थी, न उंगलियों की तरफ की इबारत। फिर कनीज को हुक्म दिया था, ‘इसे फौरन बेलीगारद के अहाते में फेंक आओ, रेजीडेंसी में।’

लेकिन इस बेहिस वाकये को वे कितनी देर तक याद करते रह सकते थे! खासकर जब इससे भी कहीं ज्यादा कड़वी सच्चाइयां उनके सामने थीं।

जैसे भी बने, समूचे भारत पर कब्जे का सपना देख रही गोरी ईस्ट इंडिया कंपनी ने पांच दिन पहले ही एक उद्घोषणा के जरिये उनका राजपाट हड़पने की कार्रवाई शुरू कर दी थी और उनको इतना वक्त देना भी गवारा नहीं किया था कि वे कम-से-कम 13 फरवरी 1847 को हुई अपनी ताजपोशी की वर्षगांठ पर अपना दिन का चैन और रात की नींद सलामत रख सकें।

बहरहाल, तंद्रा भंग हुई तो उन्होंने पाया कि कंपनी की

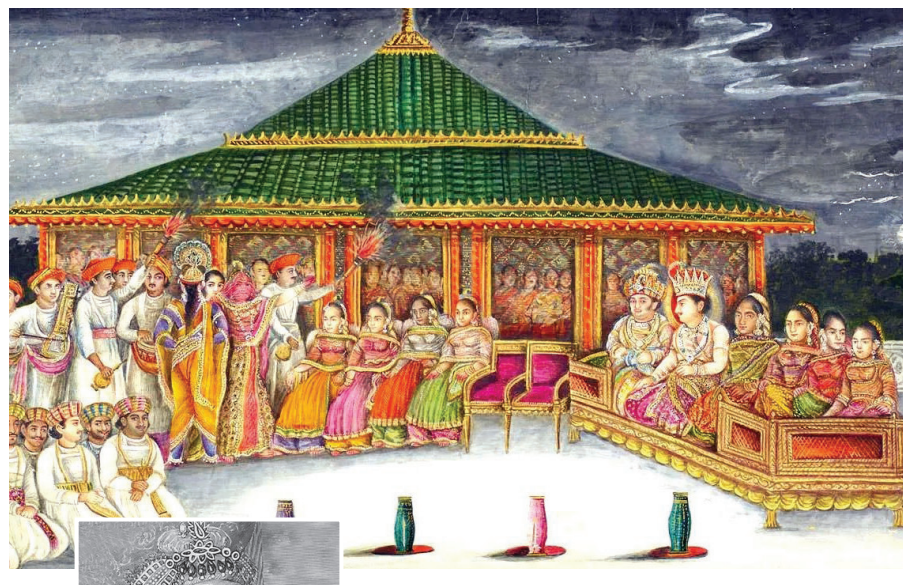

अभिशप्त नवाब वाजिद अली शाह (इनसेट) और उनका दरबार

फौज उनको गिरफ्तार करके मटियाबुर्ज (कलकत्ता, अब कोलकाता) निर्वासित करने आ पहुंची है।

न उनकी यह गिरफ्तारी अकस्मात थी, न ही निर्वासन। फिर भी वाजिद अचकचाए बिना नहीं रह पाए। फिर संभले तो याद आया - इस सबकी भूमिका तो उनकी ताजपोशी के अगले बरस 1848 में ही बननी शुरू हो गई थी, जब कंपनी ने अपने साम्राज्य विस्तार के मंसूबे के तहत लार्ड डलहौजी को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भारत भेजा और उसने पहुंचते ही इस दिशा में दिन-रात एक करने शुरू कर दिए थे। फिर भी उसे अपना सिक्का जमाने और निर्णायक कदम उठाने में आठ साल लग गए थे।

बहरहाल, पहले उसने लखनऊ स्थित ब्रिटिश रेजीडेंट डब्ल्यू एच स्लीमन द्वारा अपनी रिपोर्ट में दिए तथ्यों (जो जुटाए ही इसलिए गए थे कि उन्हें अवध को हड़पने का बहाना बनाया जा सके) के हवाले से वाजिद पर गंभीर कुशासन के आरोप लगाए, फिर स्लीमन की जगह आए नए रेजीडेंट आउट्रम से उन पर मुहर लगवा ली और वाजिद पर दबाव बढ़ा दिया कि वे अपनी मर्जी से बारह लाख रुपये सालाना पेंशन के बदले अपना सूबा कंपनी के हवाले कर दें। वाजिद इस पर राजी नहीं हुए तो सैन्य कार्रवाई के रास्ते बलपूर्वक उसे हथिया लिया।

इससे पहले उसने सतारा, नागपुर, झांसी, संभलपुर, जैतपुर, बघाट ,उदयपुर और बरार आदि कई छोटे-बडे देसी राज्यों/ रियासतों को उनके निःसंतान देशी राजाओं द्वारा किसी को गोद लेकर अपना वारिस बनाने से वंचित करके उनके राज्यों को हड़प लेने की अपनी कुख्यात नीति के तहत कम्पनी के राज्य में मिला लिया और पंजाब और सिक्किम आदि को छल-छद्म भरे युद्धों की मार्फत जीत लिया था।

इस मोड़ तक पहुंचकर वाजिद ने जैसे खुद से ही पूछा - क्या मैं इसी सलूक के लायक था?

आम तौर पर माना जाता है कि उस वक्त लखनऊ विलासिता में इस कदर डूबा हुआ था कि वाजिद को अपदस्थ और गिरफ्तार करने के लिए अंग्रेज सेना को एक बूंद खून भी नहीं बहाना पड़ा, क्योंकि उसका कोई प्रतिरोध ही नहीं हुआ। लेकिन इसका पूरा सच यह है कि अपदस्थ किए जाने के बावजूद वाजिद को उम्मीद थी कि वे इंग्लैंड की 'इंसाफपसंद' महारानी विक्टोरिया से कंपनी द्वारा बेजा तौर पर अवध का उनका राज्य हड़प लेने की शिकायत करके उसे वापस पा लेंगे। ऐसे में लखनऊ के खून बहाने की कोई जरूरत ही नहीं थी।

लेकिन साल बीतते-बीतते वाजिद की उम्मीद नाउम्मीद हो गई। तब लखनऊ में ऐसा आक्रोश फैला, जिसने देश के पहले स्वतंत्रता संग्राम की ज्वाला को अवध की सीमाओं में दिल्ली के पतन के बाद भी धधकाए रखा। कंपनी द्वारा ‘खलनायक’ करार दिए गए वाजिद का अवयस्क बेटा बिरजिस कदर गद्दी पर बैठा और उसकी मां बेगम हजरतमहल ‘आफत की परकाला’ बनकर अंग्रेजों पर इस तरह टूट पड़ी कि उन्हें नाकों चने चबवा दिए।

लेकिन जहां तक वाजिद की बात है, वे अंग्रेजों द्वारा कुछ अर्धसत्यों के सहारे गढ़ी गई ‘राजकाज के प्रति उदासीन, औरतखोर, आरामतलब और अय्याश’ शासक की अपनी छवि के ऐसे शिकार हुए कि उससे आज तक मुक्त नहीं हो पाए। यों, उनकी यह छवि पूरी तरह निराधार नहीं थी और उसे बनाने में, जैसा कि पहले बता आए हैं, स्लीमन द्वारा नवंबर 1849 से फरवरी 1850 के बीच सूबे का दौरा कर डलहौजी को भेजी गई रिपोर्ट ने बड़ी भूमिका निभाई थी। यह रिपोर्ट अब ‘ए जर्नी थ्रू द किंगडम ऑफ अवध’ नामक पुस्तक की शक्ल में उपलब्ध है।

इसीलिए अवध में आज भी किसी के सामने वाजिद का नाम ले लीजिए, तो वह उन पर कई तोहमतें जड़ देता है। और कहीं आपने कह दिया कि उसका रहन-सहन तो वाजिद अली शाह जैसा है, तो वह ऐसा जताएगा कि जैसे आपने उसे कोई भद्दी-सी गाली दे दी है। यह इस तथ्य के बावजूद है कि वाजिद के निर्वासन के बाद लखनऊ उनकी याद में जितना तड़पा, उतना शायद ही किसी और शासक के लिए तड़पा हो।

लेकिन उनका दुर्भाग्य कि उन्हें बेगानों तो क्या, अपनों ने भी ठीक से नहीं समझा। इसीलिए आज भी कोई बताता है कि अंग्रेज सेना उन्हें गिरफ्तार करने पहुंची तो वे इसलिए नहीं भाग सके, क्योंकि उन्हें जूते पहनाने वाला सेवादार हाजिर ही नहीं था, तो कोई यह कि उन्होंने तीन सौ से ज्यादा शादियां कीं और तलाक देने में भी बेहद दरियादिल रहे।

निस्संदेह, वे विलासी थे, लेकिन उसके सिलसिले में उनका नाम लिया जाता है तो यह बात भुला दी जाती है कि वे अपने वंश की विलासिता की पुरानी परंपरा के नए शिकार भर थे, जो नवाब आसफउद्दौला (26 जनवरी 1775 से 21 सितंबर 1797) ने अपने वक्त में शुरू की थी। जिस बेबसी ने वाजिद को अंग्रेजों का मोहताज बनाया, वह भी उन्हें अपने पुरखों से विरासत में प्राप्त हुई थी- ईस्ट इंडिया कंपनी से की गई उन संधियों के रूप में, जिन्होंने नवाबों का इकबाल खत्म कर डाला था।

इसीलिए कंपनी के अफसरों ने उनके अवध का ताज सिर पर धरते ही उनको दो पाटों के बीच पीसना शुरू कर दिया था। वैसे भी, नवाब के तौर पर कंपनी की पहली पसंद वाजिद के बड़े भाई मुस्तफा अली थे। तिस पर वाजिद की विडंबना यह कि कंपनी के अफसर एक ओर तो उन पर राजकाज छोड़कर आमोद-प्रमोद में डूबे रहने के आरोप लगाते थे और दूसरी ओर समुचित प्रशासनिक सुधार और सैन्य पुनर्गठन नहीं करने देते थे।

पूर्ववर्ती नवाबों द्वारा की गई संधियों के तहत वाजिद के वक्त तक अवध के राजपाट की सुरक्षा कंपनी की सेना के हवाले हो गई थी और नवाबी सेना की भूमिका नगण्य रह गई थी। वाजिद कंपनी की इसके पीछे की चालाकी समझते थे, इसलिए जल्द ही नवाबी सेना के पुनर्गठन में लग गए थे। उन्होंने महिला सैनिकों की एक टुकड़ी बनाकर उसको पुरुष सैनिकों जैसा प्रशिक्षण दिलवाया था। पुरुष टुकड़ियों की ही तरह इस महिला टुकड़ी की भी रोजाना सुबह पांच बजे परेड हुआ करती थी। इससे खफा तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने रेजीडेंट कर्नल रिचमंड की मार्फत उन्हें निर्देश दिया था कि वे अपनी पुलिस व्यवस्था में जो भी सुधार करें, सेना के पुनर्गठन से परहेज ही रखें। लेकिन ‘विलासी’ वाजिद ने गवर्नर जनरल का यह निर्देश नहीं माना था।

1857 में स्वतंत्रता का पहला संग्राम शुरू हुआ तो हालांकि वाजिद की बनाई महिला टुकड़ी बिखर चुकी थी, लेकिन उसका अनुभव बेगम हजरतमहल के बहुत काम आया। उन्होंने उसे पुनर्गठित कर महलों की बांदियों और हब्शी महिलाओं तक को सैनिक बना दिया। कई मोर्चों पर इन महिला सैनिकों की टुकड़ियां पुरुष वेश में संग्राम में शामिल हुईं और उनमें से अनेक ने वीरगति भी पाई।

सत्ता से बेदखली और निर्वासन के बाद 21 सितंबर 1887 को मटियाबुर्ज (कलकत्ता) में अंतिम सांस लेने तक लखनऊ उनसे छूटा ही रहा, लेकिन उसमें अभी भी गाहे-बगाहे निर्वासन के वक्त कहीं उनकी ये पंक्तियां गूंज ही जाती हैंः दर-ओ-दीवार पे हसरत की नजर करते हैं, खुश रहो अहल-ए-वतन हम तो सफर करते हैं। इसके अलावा वह अगर परीखाने और नृत्य का आनंद लेते थे तो उन्हें सुई पकड़कर चिकन का बारीक काम भी आता था और वह रदीफ-काफिया जोड़कर 'अख्तर' नाम से शायरी भी किया करते थे।

अलबत्ता, उन्हें सूबे का लियोनार्डो दा विंची बताने वाले भी कम नहीं हैं। यह कहने वाले भी कि वे नवाबों की परंपरागत पहचान के ही बंदी बने रहते, तो न लखनऊ को नजाकत और नफासत नसीब होती, न ही उसके अदब, तहजीब और कलाओं को बुलंदी हासिल होती। ■

नवाब वाजिद अली शाह का दुर्भाग्य कि उन्हें बेगानों तो क्या, अपनों ने भी ठीक से नहीं समझा। सच्चाई तो यह है कि वे नवाबों की परंपरागत पहचान के ही बंदी बने रहते, तो न लखनऊ को नजाकत और नफासत नसीब होती, न ही उसके अदब, तहजीब और कलाओं को बुलंदी हासिल होती

Published Date 08 February, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

बंगाल में माघ की मिठास

पश्चिम बंगाल की एक खास मिठास है नलेन गुड़। यह सुगंधित गुड़ पतझड़ के दिनों के आखिर में और सर्दियों में खजूर के पेड़ के रस से बनाया जाता है

सर्बजया भट्टाचार्य

"उन्होंने मेरे दो बर्तन चुरा लिए!"

आनंदो लोहार गुस्से में हैं। दिन की शुरुआत ही खराब हुई। गोआलपाड़ा के आनंदो ने न सिर्फ वह रस गंवा दिया जो उन्हें बर्तनों में मिलना था, बल्कि 90 रुपये का नुकसान भी हो गया। यह कीमत उन दो बर्तनों की है, जिन्हें वह अपने घर से तीन किलोमीटर से कुछ दूर सोनाझुरी से खरीदते हैं।

आनंदो को खजूर, यानी भारतीय खजूर के पेड़ (फ़ीनिक्स सिल्वेस्ट्रिस) का मीठा रस इकट्ठा करने के लिए बर्तन चाहिए। वह शिउली हैं, यानी खजूर के पेड़ों पर चढ़ने वाला। तना काटकर रस निकालते और इकट्ठा करते हैं। यह काम मौसम, यानी अक्तूबर से जनवरी तक ही होता है। शिउली रात में खिलने वाले उस फूल का नाम भी है, जो बंगाल में पतझड़ का संकेत है।

उम्र के कारण कुछ झुके से दिखते 65 वर्षीय आनंदो क़रीब छह-सात साल से यह काम कर रहे हैं। उससे पहले ईंट भट्ठा में काम करते थे।

आनंदो अपने बर्तन चोरी होने से परेशान हैं- "हर मौसम में यही होता है।" हम अगले पेड़ की तरफ बढ़ने लगे हैं जिन पर वह चढ़ेंगे। हमारे पैरों के नीचे सूखे ताड़ के पत्तों के चरमराने की तेज आवाजें आ रही हैं। दिसंबर की सर्द सुबह है और आनंदो ने ठंड से बचने के लिए टोपी पहन रखी है। लीज़ पर लिए गए उनके पेड़ मानसातला में उनके मिट्टी के घर से थोड़ी दूर करीब 300 मीटर पर हैं। मगर दमा का मरीज होने के चलते उनके लिए ज्यादा मेहनत करना मुश्किल होता है। वापसी में उनके लिए लगभग सात-आठ किलो ताजा रस लादकर लाना और भी मुश्किल हो जाता है।

उन्होंने यह काम 20 साल पहले अपने साले से सीखा था। शिउली शब्द का उन्हें पता नहीं। उनके मुताबिक जो पेड़ पर चढ़ने वालों को गाछिया कहा जाता है। खुद को वह इस नाम से बुलाने में हिचकिचाते हैं क्योंकि यह सिर्फ एक मौसमी काम होता है। साल के बाकी समय वह गाय-बकरियां चराते हैं।

आनंदो लोहार हैं, जो राज्य में बतौर अनुसूचित जाति दर्ज है। पारंपरिक रूप से वह धातु का काम करते हैं। यह पेशा उनके परिवार ने कुछ पीढ़ियों पहले छोड़ दिया था और खेती करने लगा था। खजूर के पेड़ों के आसपास खेतों में आनंदो अपने खाने और बेचने के लिए आलू और दूसरी सब्जियां उगाते थे। वह जमीन अब बिक गई है। कभी यहां से गुज़रने वाली कोपाई नदी अब दूर बहती है, जिस वजह से सिंचाई मुश्किल हो गया है।

उनकी चिंता यह है कि नए मालिक ने लीज़ पर लिए गए खजूर के पेड़ काट दिए तो मौसमी कमाई पर असर पड़ेगा। पांच लोगों का आनंदो का परिवार करीब 26,000 रुपये की इसी मौसमी कमाई पर निर्भर रहता है। परिवार के अन्य सदस्य दिहाड़ी हैं।

दूसरे शिउलियों के उलट आनंदो लीज़ पर लिए गए पेड़ों के लिए नकद पैसे नहीं देते। इसके बजाय स्थानीय मालिकों को वह हर पेड़ के लिए एक किलो गुड़ देते हैं। इसलिए 30 पेड़ों के लिए उन्हें एक सीजन में 9,000 रुपये का गुड़ देना पड़ता है। बचा हुआ गुड़ ज्यादातर स्थानीय लोगों को बेच दिया जाता है। अकेले काम करते हुए वह अमूमन दिन में 20 पेड़ों पर चढ़ते-उतरते हैं। तक़रीबन दो बर्तन रस इकट्ठा करने के बाद घर जाते हैं। उनकी पत्नी उन्नति कहती हैं, "अगर आसमान साफ नहीं हो, तो रस भी साफ नहीं होता।₹ 50 साल की उन्नति बर्तन धो रही हैं, जबकि आनंदो आग तेज कर रहे हैं। उन्नति और साथी (उनकी पोती) एक पतला सफेद कपड़ा छलनी की तरह पकड़ लेते हैं और आनंदो ताज़ा इकट्ठा किया हुआ रस उसमें से एक गोल कढ़ाई में डालते हैं, जिसे फिर धीरे-धीरे उबलने रख दिया जाता है।

एकदम सुबह का वक्त है। आनंदो और उन्नति के छोटे से आंगन में लोग इधर-उधर घूम रहे हैं। कुछ मुर्गियां तेज़ी से दौड़-भाग कर रही हैं और बकरियां चुपचाप देख रही हैं। रस उबलने लगा है। हवा में मीठी, धुएं वाली सोंधी खुशबू भर गई है। जैसे-जैसे रस उबलेगा, धीरे-धीरे रंग बदलता जाएगा, साफ से गहरा भूरा। आनंदो इसे "चाय का रंग" कहते हैं। गुड़ बनाने की ज्यादातर प्रक्रिया अंदाज से चलती है। रस उबालने के दौरान समय का कोई हिसाब नहीं होता। कोई घड़ी नहीं होती। बस जिसे पता होता है, उसे पता होता है।

*

गोआलपाड़ा में आनंदो उन कुछ तीन स्थानीय लोगों में हैं, जो यह काम करते हैं। बीरभूम जिले में बाकी जगहों पर ज्यादातर शिउली प्रवासी पुरुष हैं, जो नादिया जैसे जिलों से आते हैं। उनके स्टॉल, वर्कस्टेशन और अस्थायी घर मुख्य सड़क के दोनों ओर बने हैं, जिसके दोनों तरफ गोआलपाड़ा बसा है। बीरभूम जिले में गोआलपाड़ा करीब 2,000 की आबादी (जनगणना 2011) वाला छोटा सा गांव है। ज्यादातर लोग खेतिहर या दिहाड़ी मज़दूर हैं। हाल के वर्षों में इस छोटे से शहर में होम स्टे और होटलों में तेजी से बढ़ोतरी हुई है.। इसका कुछ श्रेय शांति निकेतन के बढ़ते पर्यटन उद्योग को है, जो रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित आश्रम स्कूल और विश्वविद्यालय और आसपास के दूसरे सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्थलों के इर्द-गिर्द केन्द्रित है।

इस इलाके में खजूर के पेड़ बहुत हैं और उन्हें किसी खेती की जरूरत नहीं होती। वे जंगल में उग आते हैं। उनका मालिकाना हक इससे तय होता है कि वे किस की जमीन पर खड़े हैं।

सिउली या शिउली का जिक्र 1916 की एक बांग्ला डिक्शनरी में एक ऐसे समुदाय के रूप में मिलता है जो खजूर के पेड़ काटता और गुड़ बनाता है। साल 1932-33 की एक और डिक्शनरी में यह शब्द जुड़ा कि 24 परगना क्षेत्र में "सिउली कोई समुदाय नहीं है बल्कि वह इंसान है जो समाज के निचले तबके से आता है।"

*

मौसम के दौरान ताड़ का रस निकालने और गुड़ बनाने का काम इबादत शेख़ और अब्दुल (उनके चचेरे भाई) जैसे प्रवासियों को खींच लाता है, जो पिछले सात साल से हर मौसम में नदिया जिले के देबग्राम में अपने घर से यहां आते हैं। इबादत स्थानीय स्तर पर शिउलियों की कमी का जिक्र करते हुए बताते हैं, "जब हम आए तो यहां के लोग खुश थे। उन्होंने कहा कि अब वे रस पी पाएंगे और गुड़ खा पाएंगे।"

कमर और तने के चारों ओर मोटी नारियल की रस्सी बांधकर इबादत को पेड़ पर चढ़ने में सिर्फ़ 60 सेकंड लगते हैं। शिउली इबादत और अब्दुल एक दिन में 30 पेड़ों पर चढ़ते-उतरते हैं, जो कुल मिलाकर 600 फीट होता है, यानी 60 मंजिला इमारत की ऊंचाई के बराबर। इबादत कहते हैं, "हमने डेढ़ सौ पेड़ लीज़ पर लिए हैं। हर पेड़ के लिए हम पूरे सीजन के ढाई सौ रुपये देते हैं।" पूरे सीज़न के लिए वे प्रति पेड़ 250 रुपये का भुगतान करते हैं, जो प्रवासी शिउलियों के बीच आम चलन है। उन्हें कुल 37,500 रुपये पहले ही देने होते हैं। हर पेड़ से करीब दो से तीन लीटर रस निकलता है।

उनका काम मुंह अंधेरे शुरू होता है, जब तापमान लगभग 12 डिग्री सेल्सियस रहता है।

इबादत बताते हैं, "सबसे मीठा रस माघ में मिलता है और सबसे ज़्यादा मात्रा पौष में मिलती है, पर वह उतना मीठा नहीं होता।" वह सर्दियों के महीनों को स्वाद में बदलाव से जोड़ते हैं। मीठी चीजों की श्रेणी में एक नई चीज है नॉलेन गुड़ आइसक्रीम। इबादत कहते हैं कि उन्होंने इसके बारे में सुना तो है, पर कभी उसे चखा नहीं। दोपहर हो चुकी है और इबादत के पास शाम 5 बजे ताजे बर्तन लटकाने का काम शुरू करने से पहले कुछ खाली वक्त है।

इबादत पारी को बताते हैं, "जब हम पहली बार यहां आए थे, तो इस इलाके (गोआलपाड़ा) में हम सिर्फ चार लोग थे। अब 12-15 हैं। कमाई नीचे चली गई है।"

करीब 42 साल के इबादत ने यह मौसमी काम इसलिए शुरू किया, क्योंकि नदिया जिले में घर पर छह लोगों के परिवार का पेट पालने के लिए खेती काफी नहीं रह गई थी। साल के बाकी समय वह ज्यादातर कोलकाता में और दूसरे हिस्सों में दर्जी का काम करते हैं। अपने घर नदिया में वह एक फैक्टरी में दर्जी का काम करते हैं, पर कहते हैं कि वहां पगार कम है, जिसकी वजह से उन्हें पलायन करना पड़ता है। उनके चचेरे भाई अब्दुल कोलकाता की एक कंपनी में ट्रक ड्राइवर हैं और जब वह यहां शिउली का काम नहीं करते, तो देशभर में घूमते रहते हैं। उन्हें भी घर की याद सताती है। 34 साल के अब्दुल कहते हैं, "एखान थेके बाड़ी जाबो। एक डेढ़ माश आराम कोरा न ओबदी आर कोथाओ जाबो ना (यहां से घर ही जाऊंगा। और जब तक वहां एक-डेढ़ महीने आराम न कर लूं, तब तक कहीं नहीं जाऊंगा)।"

देबग्राम में उनके घर पर उनके परिवार के पास 7-8 बीघा (करीब 2.5 एकड़) सिंचित जमीन है, जिस पर वह अपने खाने लायक धान और सब्जियां उगाते हैं। बाकी की उपज बेचते हैं, पर वह फायदेमंद नहीं है। सिस्टम से अपनी निराशा जाहिर करते हुए अब्दुल कहते हैं, "अमारी चॉल आमार थेके कोम दाम ए किनबे, बेचबे हाई दामे। चाशी चाश न कोरले मानुष खेते पारे ना। ओथोछो शेई चाशीरी कोनो मान-इज्जत नाई (मेरा ही चावल मुझसे कम दाम में खरीदेंगे, ज्यादा दाम में बेचेंगे। किसान खेती न करे तो लोग खा नहीं सकते। फिर भी उस किसान की कोई इज्जत नहीं है)।"

अब्दुल नहीं चाहते कि उनका 11 साल का बेटा शिउली के बतौर उनके नक्शे-कदम पर चले और उन्हें शक है कि अगली पीढ़ी ऐसा कठिन काम करना चाहेगी।

*

ग्राहक सुबह 6 बजे से ही इबादत के स्टॉल पर लाइन में खड़े हो जाते हैं। प्रह्लाद रॉय बोलपुर शहर से हैं। वह घर ले जाने के लिए कुछ पाटाली (गुड़ की सिल्ली) लेते हुए कहते हैं, "मैं उनसे तीन साल से खरीद रहा हूं।" पाटाली की कीमत 350 रुपये किलो है। पाटाली गुड़ अक्सर घरों में साल भर के लिए जमा करके रखा जाता है।

इबादत अपने नियमित ग्राहकों का स्वागत मुस्कान और "भालो आछेन (आप कैसे हैं)?" कहकर करते हैं।

आनंदो लोहार और उनके परिवार की तरह युवा और ज़्यादा ऊर्जावान अब्दुल और इबादत सिर्फ तरल झोला गुड़ तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि पाटाली गुड़ भी बनाते हैं जो सिल्ली के रूप में बेचा जाता है। यह एक मुश्किल प्रक्रिया है और सही अंदाजा लगाना काफी जरूरी होता है। गर्मी बहुत ज्यादा होगी तो जूस नीचे चिपक जाएगा और अगर बहुत कम होगी तो गुड़ जमेगा नहीं।

एक बार पाटाली की खेप तैयार होने के बाद उनके चचेरे भाइयों को कुछ देर आराम मिल पाता है। शाम होते ही इबादत फिर से खेत में जाएंगे और 30 और बर्तन लटकाएंगे और यह ढर्रा चार महीने से ज्यादा समय तक हफ्ते दर हफ्ते दोहराया जाएगा। बाकी दिन ग्राहकों से निपटने में बीत जाता है और जब रात को आखिरी ग्राहक तकरीबन साढ़े आठ बजे जाता है, तब जाकर इबादत और अब्दुल का दिन समाप्त होता है।

मुस्कराते हुए इबादत कहते हैं, "अबार तो शेई भोर बेलाई उठते होबे (अब तो हमें फिर सुबह उठना पड़ेगा)।" ■

अनुवाद: अजय शर्मा;
साभार: ruralindiaonline.org

मेहनत और धैर्य इसके पीछे खासी मशक्कत है। किराये पर लिए पेड़ों से रस निकालना आसान नहीं

सभी फोटो: जितकल्पु दास

श्रम साध्य रस को धुआंने, छानने, आंच से उतारने और सांचे में ढालने के बाद तैयार होता है गुड़

16वीं सदी के कवि कबिकंकन मुकुंदराम चक्रवर्ती ने ज़िक्र किया है- "सिउली नगरे बोइसे खेजूरेर काटी रसे गुड़ कोरे बिबिधो बिधाने" जिसका मतलब है, शिउली शहर में खजूर के पेड़ के रस से कई तरीकों से गुड़ बनाया जाता है

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर
मुंबई के हृदयस्थल में,
बीकेसी से सटे,
एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तमः
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051